अग्र-कुल-कलश

'मनोज'

श्रीमान संपादक जी,

"अग्र-जीवन"

संपादक : श्री रामलाल अग्रवाल,
460, जैन मंदिर के सामने,
गोपालजी का रास्ता,
जयपुर - 3

रमेश कुमार सागर

प्रेषित। 12/4/89

अग्र - कुल - कलश

श्री श्री १००८
महाराजाधिराज श्री अग्रसेन
की
पद्यात्मक गौरव गाथा

रामकिशोर अग्रवाल 'मनोज'

आर० के० प्रकाशन
२८०, सराफा, (दलहाई)
जबलपुर

❀ कृति—अग्र - कुल - कलश
❀ कृतिकार—रामकिशोर अग्रवाल 'मनोज'
❀ भूमिका—कौशल कुमार अग्रवाल
❀ आवरण—अंबिका प्रसाद विश्वकर्मा
❀ मुद्रक—श्री सुभाष प्रिंटिंग प्रेस
❀ प्रकाशक—आर० के० प्रकाशन
❀ प्राप्ति स्थान—स्टुडेण्ट्स बुक स्टोर्स अंधेरदेव, जबलपुर
❀ प्रथम संस्करण—जनवरी १९८९
❀ सहयोग निधि—दस रुपये

यह कृति उन समस्त
छोटे बड़े भाइयों को
सप्रेम समर्पित है;
जिन्हें
श्री श्री १००८ महाराजा अग्रसेन
की सन्तान
कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है।

धन्यवाद ज्ञापन

एरण ग्राम पंचायत के वर्तमान सरपंच श्री देवीसिंह राजपूत एवं उनके वयोवृद्ध पिता श्री मरदनसिंह राजपूत के हम आभारी हैं, जिन्होंने एरण के ध्वंशावशेषों के चिन्ह तथा ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने में हमारी सहायता की।

एरण को एरण बत्तीसी कहते हैं (शायद ३२ ग्रामों के समूह का मुख्यालय होने के कारण); यहाँ की जनसंख्या वर्तमान में लगभग ५ हजार है और वहाँ पहुँचने का साधन बैलगाड़ी है।

श्री राजपूत का कथन है कि यह ग्राम कभी राजा विराट की राजधानी था, जिसे विराट नगर कहते थे। अपने गुप्त-वास के समय २ वर्षों तक पांडव यहीं रहे थे। एरण का शेष इतिहास वे भी प्रकारान्तर से वही बतलाते हैं, जिसका उल्लेख आगे 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' में किया गया है।

ऐरण के ऐतिहासिक अवशेष मध्यप्रदेश शासन द्वारा संरक्षित हैं।

हम सागर के फोटोग्राफर श्री वृन्दावन पटेल और सागर के ही २० सूत्रीय कार्यक्रम सदस्य श्री राजा अग्रवाल को भी धन्यवाद देना चाहते हैं, जिन्होंने ऐरण की कष्ट साध्य यात्रा में हमारे सहयोगी श्री शंकरलाल गुप्ता और श्री दिनेश तिवारी का साथ दिया।

'बाबू' के प्रति मेरी भावनाएँ

▷ डॉ० स्वराज्यमणि अग्रवाल

कई वर्षों से यह अभिलाषा मन में पनप रही थी कि अग्रसेन जी की जीवनी पर एक शुद्ध काव्य की रचना की जाए। वैसे तो इस दिशा में कई प्रयत्न हुए भी, किन्तु ऐसा काव्य जो समस्त काव्योचित गुणों से पूर्ण दोषरहित हो सामने नहीं आ सका। काव्य शिरोमणि 'दुलीचंद शशी' तथा त्रिलोक कपूर की कई कविताएँ, सशक्त, छंद बद्ध ओजस्वी एवं माधुर्य गुणों से भरपूर प्रकाशित हुईं। इनमें समाज के लिए दर्द भी था आवाहन भी था, मर मिटने का दिव्य संदेश भी था। किन्तु अग्रसेन जी की संपूर्ण जीवनी पर काव्य दोषरहित कोई ग्रंथ सामने नहीं आया था।

एक दिन अन्जाने ही, मेरे मुँह से निकल गया— 'बाबू' आप अग्रसेन जी के जीवन चरित पर एक गेय काव्य लिखिये। 'बाबू' रामकिशोर जी 'मनोज' जबलपुर के जाने माने कवि हैं। जो उन्हें जानते हैं वे उनके अति व्यस्त जीवन से अपरिचित नहीं हैं। फिर उन्होंने अनूठे काव्य ग्रंथों से जबलपुर का गौरव बढ़ाया है—अहिल्या का परित्याग, वैश्रवण, राम-अवतरण, श्री रामेश्वरम्, स्वर्ण-मयी लंका, अयोध्या में श्रीराम, सिय-विजन-वास, राम-तनय रामकथा संजीवन, महाराज्ञी त्रिपुर सुन्दरी, बंगोद्धार आदि उनके ऐतिहासिक किंतु मौलिक खंड काव्य हैं। कवि का हृदय अपनी संस्कृति की गरिमा से इतना गौरवान्वित है

कि वह कहीं भी संस्कृति के विरुद्ध आचरण को स्वीकार नहीं करता। यहीं पर कवि की मौलिकता का दिग्दर्शन बरबस ही हो जाता है।

'अग्र-कुल-कलश' बाबू की अनुपम काव्य रचना है। इसमें इतिहास भी है, और उनकी स्वयं का खोज भी। लक्ष्मी पूजन उसका यंत्र तथा पूजन विधि आरती सभी बाबू की कुलदेवी के प्रति श्रद्धा व समर्पण भाव के प्रतीक हैं। ऐरन गोत्र पर उनका अपना ही चिंतन उनकी शोध परक दृष्टि का प्रतिपादन करता है। उनके काव्य में सर्वत्र रस-धारा का प्रवाह पाठक को अंत तक बाँधे रखने में पूर्णतः सक्षम है। चिरंजीलाल जी अग्रवाल के बाद अग्रसेन जी के जीवन चरित्र पर आधारित यह द्वितीय काव्य कृति है। इसमें इतिहास की सच्चाई के साथ भारतीय संस्कृत एवं उसके गौरव का सुनियोजित वर्णन प्रशंसनीय है।

सरस रस धारा में बहती हुई कवि की लेखनी नवों रसों का रसमय वर्णन करते हुए कहीं लांछित नहीं होती। यही कवि की विशेषता है। बाबू दीर्घजीवी हों, उनकी कलम सदा इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा कहती रहे यही कामना है।

अग्र-कुल-कलश

(ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य)

-कौशलकुमार अग्रवाल
एम.ए.

भारतीय इतिहास की यह विडम्बना रही है कि भगवान बुद्ध के पूर्व का कोई प्रामाणिक इतिहास हमें प्राप्त नहीं होता। बल्कि यदि हम यह कहें कि सिकन्दर के आक्रमण के बाद ही भारत का इतिहास कालक्रम की दृष्टि से बहुत कुछ शुद्ध प्राप्त होता है, तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसा हम इसलिए कह सकते हैं कि लगभग ५०० वर्ष ई. पू. का इतिहास लिखते समय हमारे इतिहासकार बहुधा "शायद" का सहारा लेते हैं। सिकन्दर के आक्रमण के समय के राजनैतिक भारत का उल्लेख करते समय भी अधिकांश नाम यूनानी भाषा के ही ग्रहण कर लिये गये हैं, क्योंकि इतिहास-रचना में यूनानी इतिहासकारों का ही सम्बल लेना पड़ा है। पुराण, बौद्ध तथा जैन साहित्य भी कुछ सीमा तक हमारी सहायता करते हैं; किन्तु फिर भी अनेक क्षेत्रों और व्यक्तियों के नाम हमें अनुमानतः ही ग्रहण करना पड़ते हैं।

जब देश के इतिहास का यह हाल है, तो किसी जाति के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ कहना तो रेत में से तेल निकालने जैसा ही है। उस स्थिति में तो और भी कठिन है, जबकि राजनैतिक झंझावातों और विदेशी आक्रमणों के कारण न जाने कितने स्थान मिटे, कितने नये बसे और कितनों के नामों में उलट फेर हुआ। नये नाम इतने रच-पच गये हैं कि पुराने नाम विस्मृति के गर्त में समाते चले जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसी जाति का प्रामाणिक इतिहास लिखना, दूसरे सौर मंडल की खोज करने जैसा ही है।

इसके बावजूद हम बहुत भाग्यशाली हैं। इतिहास में हमारे अस्तित्व के पर्याप्त संकेत मिल जाते हैं, जिनके आधार पर कम से

कम २५०० वर्षों का इतिहास तो हम तैयार कर ही सकते हैं; और हमारे बन्धुओं ने प्रयास भी किया है। गत सौ वर्षों में लगभग बीस पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। सभी ने अपने-अपने अध्ययन के आधार पर कुछ न कुछ नई जानकारी देने की चेष्टा की है। यद्यपि इन ग्रन्थों में कल्पना का इतना मिश्रण है कि अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं, तथापि प्रयास प्रशंसनीय तो है ही। सम्भव है, कभी हमारे सामने पूर्णतः प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत हो जावे। इस दृष्टि से श्रीमती स्वाराज्यमणि अग्रवाल की पुस्तक "अग्रसेन, अग्रोहा और अग्रवाल" विशेष स्तुत्य है। उन्होंने इतिहास ग्रंथों का मनन-मंथन करके मोतियों का अनुसंधान किया है।

इसी क्रम में एक पुस्तक यह (अग्र-कुल-कलश) भी है, जिसमें गागर में सागर भरने की चेष्टा की गई है। कवि ने किंवदन्तियों, ऐतिहासिक साक्ष्यों और अग्रवाल जाति के इतिहास-संबंधी विभिन्न पुस्तकों के आधार पर बहुत सी नई अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं। यहाँ हम उनकी पुष्टि हेतु कुछ कहना चाहेंगे।

अग्रसेन-वंश का अन्तिम प्रमुख शासक अग्रचन्द्र था, जिसका उल्लेख यूनानी इतिहासकार कर्टियस ने अग्रमिस नाम से किया है। उसने लिखा है कि "गंगा (अर्थात् व्यास) के उस पार गंगरिपाई और प्रासियाई जातियों का शासक अग्रमिस अपने देश की रक्षा के लिए सीमा पर २० हजार अश्वारोही, २ लाख पदाति, चार घोड़ों वाले २० हजार रथ तथा सबसे भयानक ३ हजार गज-सेना तैयार रखता है।" एक अन्य इतिहासकार प्लूटार्क ने भी इस बात का समर्थन किया है। गंगरिपाई और प्रासियाई किन्हें कहा गया है, स्पष्ट नहीं है। संभव है इतिहासकार का तात्पर्य गंगा अर्थात् व्यास नदी के पार की और पारियात्र क्षेत्र की जातियों से रहा हो। पारियात्र क्षेत्र में वर्तमान हरियाणा का कुछ भाग सम्मिलित होता

था। हमारे सोलह जनपद व्यास नदी के दक्षिण-पश्चिम में काफी नीचे तक फैले हुए थे। एक जनपद व्यास नदी के उत्तरी भाग में तथा एक रावी और चिनाव नदियों के मध्य में स्थित था। इसे यूनानी इतिहासकार ने अग्लसाई कहा है। भारतीय इतिहासकारों ने इसका अनुवाद अग्रश्रेणी किया है। अग्रश्रेणियों से सिकन्दर का युद्ध हुआ था, जिसमें उसे बहुत क्षति पहुँची थी; परिणाम यह हुआ कि उसने इस पूरे जनपद का ही विध्वंश कर डाला। इतिहासकारों के अनुसार यहाँ एक भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा। रतिभानुसिंह नाहर अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास" में कर्टियस का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "जब इस वीर जाति ने देखा कि अब पराजय अनिवार्य है, तो वे अपने घरों में आग लगाकर स्त्रियों और बच्चों सहित आग की धधकती लपटों में जल मरे। यह सम्भवतः भारतीय इतिहास में जौहर व्रत का प्रथम उदाहरण है।"

सिकन्दर ने भारत से अन्तिम विदा ३२५ ई. पू. में ली थी। इसके चार वर्ष बाद ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्दवंश का शासन समाप्त कर मगध का राज्य हस्तगत कर लिया था। कुछ ही वर्षों के बाद उत्तर-पश्चिम भारत के अधिकांश छोटे-छोटे राज्य, जनपद और गणराज्य मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत आ चुके थे। हमारे अस्तित्व का संकेत यहाँ भी मिल जाता है। गणराज्य और जनपद अपनी व्यवस्था हेतु स्वतन्त्र थे। चन्द्रगुप्त के शासनकाल में इन्हें सम्मान प्राप्त था। किन्तु, उसके पुत्र विन्दुसार के शासन काल में कुछ अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। फलस्वरूप ये गणराज्य और जनपद असन्तुष्ट हो गये। इस असन्तोष या विद्रोह का दमन करने हेतु अशोक को भेजा गया था। अशोक तक्षशिला तक गया था। मार्ग में उसने जनता की शिकायतें सुनी थीं। इसी सन्दर्भ में तिब्बती

इतिहासकार लामा तारानाथ का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि "अमीरों और १६ नगरों के राजाओं के विध्वंश तथा पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के मध्यस्थ राज्यों का अधिकारी बनाने में चाणक्य साधन सिद्ध हुआ।" प्रश्न उठता है कि ये अमीर और १६ नगर कौन से थे ? निश्चय ही ये अग्रवंशियों के जनपद थे; क्योंकि ये ही कुशल व्यवसायी और वैभवशाली थे; अतः तारानाथ ने इन्हें अमीर कहा तो गलत क्या है !

निरन्तर होते हुए आक्रमण और राजनैतिक उठा-पटक के कारण हमारे जनपदों को भी क्षति पहुँची हो, तो आश्चर्य नहीं। अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए एक सबल संगठन आवश्यक होता है; अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य साम्राज्य के अन्तिम दिनों में कुछ और जनपदों को सम्मिलित करके एक गण-संघ की स्थापना की गई। इसे यौधेय गण की संज्ञा दी गई। [आचार्य पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में जिन २२ जनपदों का उल्लेख किया है, उनमें यौधेय जनपद भी एक है। इतिहासकारों ने पाणिनि का समय ७०० से ३५० ई. पू. के मध्य माना है। इसका अर्थ ये हुआ कि इस जनपद का अस्तित्व लगभग २००० वर्षों तक रहा।] इतिहास ग्रन्थ साक्षी हैं कि यौधेय गण-संघ उत्तरी राजपूताने तथा दक्षिण-पूर्वी पंजाब के विशाल भू-भाग में फैला हुआ था और अपनी स्वातंत्र्य प्रियता के लिए प्रसिद्ध था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी पुष्टि की है कि आग्रेय जनपद इसी गण संघ के अन्तर्गत थे। अग्रोहा इसी क्षेत्र में आज भी विद्यमान है। यहाँ पर जीर्णोद्धार कार्यक्रम के अन्तर्गत उत्खनन में यौधेय गण के पर्याप्त सिक्के प्राप्त हुए हैं।

मौर्यकाल और उसके बाद का इतिहास संकेत देता है कि यौधेय गण किसी न किसी साम्राज्य के अंतर्गत ही रहा है। कुछ

अवधि इसने कुषाणों के अधीन भी व्यतीत की है। उन्होंने यौधेयों को सिर नहीं उठाने दिया। किन्तु, सन् १४५ ई. में स्वतंत्रता का बिगुल बज उठा। साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले शासकों को यौधेयों की स्वातन्त्र्येक्षा असह्य थी; किन्तु वे अकेले जूझने में असमर्थ थे; अतः उन्होंने उज्जैन के शक क्षत्रप रुद्रदामन का दामन थामा और इस गण संघ को रौंद डाला। [इस संघर्ष में हमारे अनेक गोत्रों को पर्याप्त क्षति पहुँची; किन्तु सर्वाधिक प्रभावित एरण गोत्री हुए। इस गोत्र का केवल एक शिशु जीवित बच पाया, जिसकी रक्षा एक गौड़ ब्राह्मणी ने कठौता ढक कर की थी। इसी कारण आज भी एरण गोत्रियों में कठौते की पूजा होती है और गौड़ ब्राह्मणों को सम्मान दिया जाता है। कालान्तर में इस शिशु का परिवार अन्यत्र प्रवासी हो गया और बीना नदी के तट पर स्थित एक गाँव में जा बसा। यह कदाचित हमारे प्रवास की पहिली घटना थी।] इस घटना ने हमारी शक्ति को तो क्षीण कर दिया, पर स्वतन्त्रता की भावना क्षीण नहीं हुई; फलस्वरूप दूसरी शताब्दी समाप्त होते-होते स्वतन्त्रता का झण्डा पुनः लहराने लगा और तीसरी शताब्दी में कुषाण-शक्ति का मान-मर्दन करके ही यौधेयों ने दम लिया। डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर उपर्युक्त विवरण देते हुए लिखते हैं कि वर्तमान सहारनपुर, देहरादून, दिल्ली, रोहतक, लुधियाना और काँगड़ा जिले इस अवधि में यौधेय गण संघ के अंतर्गत थे। प्रश्न उठ सकता है कि उपर्युक्त विवरण से यह कहाँ सिद्ध होता है कि यह गाथा अग्रवंशियों की ही है। प्रश्न का उत्तर भी इतिहास के पृष्ठों में ही उपलब्ध है। सन् ६०६ ई. में भारत आये चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने अपने लेख में पश्चिमी क्षेत्र में गान्धार से लेकर समुद्र तक फैले १८ राज्यों के नाम गिनाये हैं। इनमें से एक राज्य को सतलज नदी के नाम पर शटोत्ल या शतद्रु कहा है और दूसरे को पोलिएटोलो अर्थात् पारियात्र कहा है। उसने यह भी उल्लेख किया है कि यहाँ पर कोई वैश्य नरेश था

और यह स्वतंत्र था। ह्वेनसाँग के इस कथन का यदि हम ६०० वर्ष पूर्व के कर्टियस के उल्लेख से सामंजस्य स्थापित करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि एक क्षेत्र विशेष में दीर्घ अवधि तक वैश्य नरेशों का शासन रहा है और ये अग्रवंशीय ही थे। यह बात अलग है कि समय-समय पर क्षेत्रफल घटता-बढ़ता रहा हो।

यौधेय गण संघ कब तक अस्तित्व में रहा, यह बात स्पष्ट नहीं हो सकी, क्योंकि तीसरी शताब्दी समाप्त होते-होते गण राज्यों के पतन का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका था। गंगा-यमुना के क्षेत्र नागवंशी राजाओं के अधिपत्य में आना प्रारम्भ हो चुके थे। सम्भव है कि आग्नेय जनपद पुनः सिकुड़ गये हों और वहाँ गणतंत्र के बदले राजतंत्र की प्रतिष्ठा हो गई हो। ह्वेनसाँग के कथन से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। यह भी सत्य है कि एक सबल केन्द्र के अभाव में कोई सत्ता टिक नहीं सकती, अतः छोटे-छोटे गण, जनपद और राज्य केवल प्रतिनिधि शासक रह गये हों, तो आश्चर्य नहीं। सम्भावना तो ये भी है कि नाग वंशियों और गुप्त वंशियों के शासनकाल तक हमसे विशेष छेड़छाड़ नहीं हुई होगी। क्योंकि, नागवंशियों से हमारे सम्बन्ध बहुत पुराने थे; और वाकाटक महारानी प्रभावती गुप्ता के एक अभिलेख के अनुसार गुप्त वंशीय शासक धारण गोत्रीय थे। (प्रभावती गुप्ता चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री थीं) धारण गोत्र हमारे १८ गोत्रों में से एक है; यद्यपि यह लुप्त हो चुका है। गुप्त वंशीय इतिहास यह सूचित करता है कि ये यौधेय समुद्र-गुप्त को कर दिया करते थे। समुद्रगुप्त का समय इतिहासकारों ने ३२८ ई. से ३८० ई. के मध्य निर्धारित किया है। उनके अनुमान के आधार प्रयाग, गया और एरण में प्राप्त शिलालेख हैं।

एरण वर्तमान सागर जिले में बीना नदी के तट पर बसा हुआ है। यहीं पर दूसरी शताब्दी के अन्त में एरण गोत्री प्रथम परिवार

प्रवासित होकर बसा था। गुप्त काल की यह एक विशिष्ट परम्परा थी कि शासक श्रेणी के और सम्पन्न व्यक्ति अपनी या अपने पूर्वजों की स्मृति में मंदिर आदि स्मारक बनवाते थे तथा स्थानों आदि का नामकरण करते थे। यह परम्परा बहुत-कुछ अंशों में आज भी प्रचलित है। अनुमान है कि जहाँ पर प्रथम एरण गोत्री परिवार बसा था, उसी अनाम ग्राम का नाम "एरण" इसी परम्परा के अंतर्गत रख दिया गया। धीरे-धीरे एरण का इतना विकास हुआ कि यह क्षेत्र गुप्त वंशीय शासकों का एक "विषय" बन गया। सन् ४१५ से ४५५ के मध्य कुमार गुप्त के पुत्र घटोत्कच गुप्त को यहाँ का प्रशासक बना दिया गया। राज-सम्बल प्राप्त होते ही यहाँ की दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। यहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ, साथ ही यह क्षेत्र पश्चिम भारत को जाने वाले राज मार्ग से जुड़ गया और व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बन गया।

इतिहास के पृष्ठ बोलते हैं कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में, मध्य एशिया की एक बर्बर जाति 'हूण' ने भारत पर आक्रमण किया था और पश्चिमोत्तर भारत में भयंकर रक्त तांडव खेला था, पर इन हूणों को स्कन्दगुप्त ने बलपूर्वक भारत की सीमा के बाहर खदेड़ दिया था। इन्हीं हूणों ने १५० वर्षों के बाद पुनः प्रवेश किया और ये मालवा तक चढ़ आये। उन दिनों एरण का प्रशासक बुद्धगुप्त का एक सामन्त मातृ विष्णु था। उसने हूणों को एरण में प्रवेश नहीं करने दिया। इस सफलता के उपलक्ष्य में उसने भगवान जनार्दन की स्मृति में अपने एक वैश्य सहयोगी ध्यान विष्णु की सहायता से ध्वज स्तम्भों का निर्माण कराया। एरण-अभिलेख में इसका उल्लेख किया गया है, जिसमें मातृविष्णु को भगवान विष्णु का महान् भक्त कहा गया है।

असभ्य बर्बर लुटेरे हूण एरण में तांडव मचाने का अवसर देख रहे थे कि उनके भाग्य से छींका टूट पड़ा। एरण का प्रशासन

मातृविष्णु के अनुज धन्य विष्णु के हाथों में आ गया, हूण धन्य हो गये; क्योंकि उसने उनकी दासता स्वीकार कर ली। बस यहीं से एरण की वैभव-लक्ष्मी ग्रहण-ग्रस्त हो गई। हूणों के आतंक का साया आठों याम मँडराने लगा। गुप्त वंशीय तत्कालीन शासक सामर्थ्य-शून्य सिद्ध हुए। सन् ५१० ई. में भानुगुप्त बालादित्य के सेनानायक ने अवश्य उद्योग किया और मध्य भारत तथा मालवा क्षेत्र से हूणों को निकाल फेंका। पर, यह युद्ध भी एरण में ही हुआ। स्वाभाविक है कि इसका दुष्परिणाम भी एरण को ही भुगतना पड़ा। एरण क्रमशः उजाड़ होता चला गया। वैसे भी गुप्तवंश का यह पतनकाल ही था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद इस वंश में कोई उल्लेखनीय सामर्थ्यशील नरेश नहीं हुआ। परिणाम स्वरूप गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ घटती चली गईं। छोटे-छोटे राज्य पुनः स्थापित हो चले। हूणों का आतंक तो बना ही था, परस्पर युद्ध भी प्रारम्भ हो गये। हूण–नेता तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल और भी अधिक रक्त पिपासु निकला।

एरण की पुनर्स्थापना हेतु इसे तीर्थ घोषित किया गया; किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस घोषणा का कोई दीर्घकालीन प्रभाव नहीं हुआ। कल्याण के तीर्थांक में एरण का उल्लेख इस टिप्पणी के साथ किया गया है कि यहाँ रात्रि में रुकना वर्जित है। यह टीप संकेत देती है कि सुरक्षा की दृष्टि से एरण की क्या स्थिति रही होगी। एरण का विष्णु वाराह मन्दिर तथा शिलालेख आदि अपनी कहानी सुनाने को आतुर हैं, पर खेद है कि सुनने वाला कोई नहीं है।

एरण का वैभव एरण गोत्रियों के पलायन के साथ ही चला गया। यौधेय गण के इन अग्रवंशियों का प्रव्रजन पुनः अपने पूर्वजों की भूमि की ओर हो गया। वे नारनौल, झंझर, भालौट आदि ग्रामों में जा बसे। यह था हमारे इतिहास का एक विस्मृत पृष्ठ, जिसे स्मरण दिलाना शायद आवश्यक था।

इतिहासकार यौधेयों को वैश्य नहीं मानते। ठीक भी है, किसी एक जनपद या राज्य में रहने वाले सभी लोग एक ही जाति या वर्ण के नहीं हो सकते; किन्तु इस बात को तो नहीं भुलाया जा सकता कि जिस क्षेत्र में यौधेय जनपद या गणसंघ था, वहाँ का शासक वैश्य ही था। सम्भव है, इसका मुख्यालय अग्रोहा रहा हो। यह भी सम्भव है कि ज्यों-ज्यों राजनैतिक परिवर्तन हुए, त्यों-त्यों अग्रोहा अपने आप में सिकुड़ता चला गया हो, और कालान्तर में यहाँ के शासक के पास केवल ६०० एकड़ भूमि का स्वामित्व रह गया हो। यदि अग्रोहा एक सशक्त राज्य बना रहता, तो मुहम्मद गोरी शायद उसे नष्ट न कर पाता। किन्तु, सब दिन एक से नहीं रहते; उत्थान और पतन जीवन चक्र का अनिवार्य परिणाम है। यही अग्रवाल जाति के साथ भी हुआ। राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ हम अपनी मुख्य भूमि छोड़कर देश के अन्य भागों में बसते चले गये; किन्तु जहाँ भी रहे, अपनी योग्यता की छाप छोड़ी। मौर्यों के शासन काल में उज्जैन का प्रशासक एक वैश्य को बनाया गया था। मुगलों ने भी अनेक वैश्यों को अपनी प्रशासनिक सेवा में लिया था। गुप्त वंशीय शासक हमारी गोत्रावली के अनुसार वैश्य थे, और उनका शासन काल भारतीय इतिहास में स्वर्णिम काल माना जाता है। इस काल में साहित्य, कला, विज्ञान, व्यापार—हर क्षेत्र में उन्नति हुई। आज भी अपने देश की उन्नति में हमारा यथा शक्ति योगदान है।

इतना लिखने के बाद भी एक प्रश्न बना ही हुआ है–इतिहास में कहीं भी अग्रवाल संज्ञा का उल्लेख नहीं है; तब यह कैसे मान लिया जाय कि पूर्व वर्णित सब कुछ अग्रवालों से ही सम्बन्धित है? इस सन्दर्भ में निवेदन है कि एक दो शताब्दी पूर्व तक किसी भी व्यक्ति की पहिचान धर्म, वर्ण और गोत्र के आधार पर ही होती थी;

इसीलिए हमारे पूर्वज अपने नाम के आगे गोत्र लिखना ही पसन्द करते थे; आज भी बहुत लोग गोत्र लिखते हैं। अपने नाम के आगे अग्रवाल लिखना शायद बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ है; कदाचित इसीलिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, रायकृष्णदास और लाला लाजपत राय जैसी प्रख्यात विभूतियों के नाम के साथ अग्रवाल शब्द नहीं जुड़ा है। किन्तु, ये सभी जानते थे कि हमारे पूर्वजों का उद्गम कहाँ से है। अतः अग्रसेन महाराज ने वैश्यों के जिन १८ गोत्रों का संगठन कर एक विशिष्ट जातीय आधार तैयार किया, उन्होंने कालान्तर में स्वयं को एक जाति समूह मान लिया और अपनी एक पहिचान बनाई। सहयोग का सूत्रपात, एक ईंट एक मुद्रा के द्वारा, स्वयं अग्रसेन जी कर गये थे, उसे रोटी-बेटी के व्यवहार द्वारा और सुदृढ़ता प्रदान की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ज्ञात इतिहास में लगभग २००० वर्षों तक हमने राजनीति को प्रभावित किया—कभी अकेले और कभी दूसरों के सहयोग द्वारा। राजपूत काल के पूर्व तक हमें ताज़ीम (शासन और जनता द्वारा सम्मान) प्राप्त था; किन्तु कालचक्र ने इस अवधि तक हमसे शस्त्र वापिस लेकर अर्थ-शास्त्र थमा दिया था। हमने नियति का स्वागत किया; माता महालक्ष्मी ने राज वैभव के स्थान पर अपने पुत्रों को धन वैभव सौंप दिया। इस प्रकार हम पुनः विशुद्ध वैश्य हो गये। पुरातात्विक अनुसंधान कार्यक्रम के अन्तर्गत जब अग्रोहा और उसका विस्मृत इतिहास पुनः प्रकाशमान हुआ तो यह स्वाभाविक ही था कि अपनी एकता का परिचय हम किसी एक संज्ञा द्वारा दें। अतः हमारे मनीषी बन्धुओं ने एक सारगर्भित नाम चुन लिया—"अग्रवाल"। इस जाति नाम को ग्रहण करने के तीन कारण हैं—हमारे पूर्वज अग्र (सेन), जो हमारे प्रातः स्मरणीय हैं; हमारे १८ गोत्रों का उद्गम स्थान "अग्रोहा" जो हमारी जातीय एकता का प्रतीक है;

और अग्र का शाब्दिक अर्थ, जो हमें स्मरण दिलाता रहेगा—अग्र अर्थात् आगे—सबसे आगे।

अन्त में एक बात और कहनी है कि समय के थपेड़ों और आजीविका की विवशता ने हमें अलग-अलग कर दिया; समय के अन्तराल ने ही हमें मारवाड़ी, हरयाणवी, सिरौंजिया, देशवाल, बुन्देलखण्डी और न जाने क्या-क्या बना दिया। इस अन्तर को कम करने की चेष्टा हम निरन्तर करते चले आ रहे हैं। किन्तु, अब समय की ही माँग है कि जो भी थोड़ा-बहुत अंतर शेष बचा है, उसे भी समाप्त हो जाना चाहिए, ताकि प्रत्येक अग्रवाल गर्व पूर्वक कह सके—अग्रवाल यानी अग्रवाल।

❀❀

मन कहता है औपचारिकता का निर्वाह करूँ
श्रीमती डॉ० स्वराज्यमणि अग्रवाल
के प्रति, किन्तु कहूँ क्या; जबकि
उन्हीं के कहने और
सहयोग से यह कृति
अवतरित हुई।

आओ बैठो इधर, हृदय के दीप जलायें ।
गौरव गाथा सुखद, पूर्वजों की हम गायें ।।
महाराज श्री अग्रसेन की सब सन्तानें ।
आज उन्हीं के साथ, स्वयं को भी पहचानें ।।

अग्र कुल कलश

[१]

वैसे तो जग रचा-
गया ब्रह्मा के द्वारा ।
मनुज-वृद्धि का श्रेय,
गया है मनु को सारा ।।
इनके सुत इक्ष्वाकु,
सूर्य कुल के निर्माता ।
इसी वंश में हुए,
राम संसार-विधाता ।।
अग जग में हो रही,
आज तक जिनकी पूजा ।
इनसे बढ़कर हमें,
मिला भगवान न दूजा ।।
मनु के तनय तृतीय,
हुए 'नेदिष्ट' सुनामी ।
प्रबल प्रतापी वीर,
कुशल युद्धक उद्दामी ।।

जग में यह जो आज,
वैश्य कुल कमल खिला है ।
उसका पौधा प्रथम,
यहो 'नेदिष्ट' मिला है ।।
और इन्होंने पुत्र,
तीसरा था जो पाया ।
हुआ दान - प्रिय तथा,
'वात्सप्री' नाम धराया ।।
इनके सुत 'मांकील',
हुए विख्यात सुदानी ।
इन्हें पुत्र 'धनपाल',
मिले अति ज्ञानी ध्यानी ।।
था 'शिव' नामक ज्येष्ठ,
पुत्र इनका बलशालो ।
सत्य धर्म की नीति,
सदा हो जिसने पालो ।।
था 'समाधि' सुठि नाम,
पुत्र अष्टम जो इनका ।
जगती में वर्चस्व,
न था कम छाया जिनका ।।
फिर समाधि ने पुत्र,
दूसरा 'मोहन' पाया ।
ज्ञानवान् गुणवंत,
जगत में नाम कमाया ।।

मोहन तनय अनेक,
एक 'वल्लभ' कहलाया ।
अग्रसेन - सा पुत्र,
कि जिसने अनुपम पाया ।।
आओ हम सब करें,
हृदय से चर्चा उसकी ।
अग्रवंश में आज,
हो रही पूजा जिसकी ।।
कहें शुभ घड़ो दिवस,
अग्र ने जन्म लिया था ।
धरा धाम को छुआ,
सुपावन उसे किया था ।।
जन्म - पत्रिका बनी,
उसे जिस जिसने देखा ।
राज - योग है प्रवल,
गणों का था यह लेखा ।।
होनहार के पाँव,
पालने में दिखते हैं ।
स्वावलम्ब हो स्वतः,
भाग्य अपना लिखते हैं ।।

महाराज अग्रसेन का प्रारंभिक नाम 'अग्र' । राज्यारोहण के बाद 'अग्रसेन' ।

गुरु - गृह भेजा गया,
हो गया पाटी - पूजन ।
अल्प - काल में प्राप्त-
कर लिया था विद्या - धन ।।
रण - कौशल का ज्ञान,
किसी ने नहीं दिया था ।
पता नहीं किस भाँति,
कहाँ से सीख लिया था ।।
संस्कार जो पूर्व-
जन्म के ले आते हैं ।
उसका फल या कुफल,
यहाँ पर पा जाते हैं ।।
फिर इनके तो पूर्व-
पुरुष थे तपे तपाये ।
जहाँ कहीं जब गये,
विजयश्री लेकर आये ।।
कुल के कर्माकर्म,
उतर आते हैं उनमें ।
परम्परा की नींव,
पड़ी रहती है जिनमें ।।
मृग - शावक को कभी,
न कोई सिखलाता है ।
भरता है चौकड़ी,
सीख कैसे जाता है ।।

गुरुवर को दिख पड़ी,
एक दिन मस्तक रेखा ।
उत्सुकता - वश लेख,
युगल हाथों का देखा ।।
अतः उन्होंने कहा,
नगर तुम स्वतः बसाओ ।
राज - योग आ गया,
अधिक मत देर लगाओ ।।
है प्रतापपुर मध्य,
नहीं गति अभी तुम्हारी ।
हैं जिसके तत्काल,
कई उत्तराधिकारी ।।
लक्ष्मी - पूजन करो,
करो विधिवत् व्रत इनका ।
आधिपत्य है बना,
कि धन वैभव पर जिनका ।।
करके इन्हें प्रसन्न,
सभी कुछ पा जाओगे ।
औरों को भी स्वतः,
दान फिर दे पाओगे ।।

दक्षिणांचल में स्थित प्रतापनगर में इनके पूर्वज धनपाल का शासन था ।

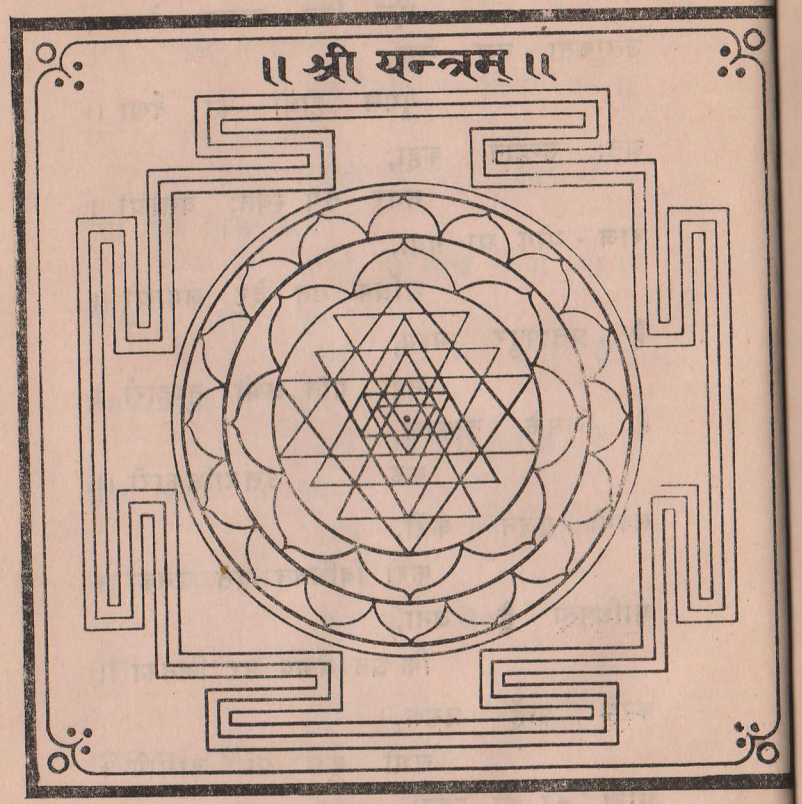

(कुलदेवी महालक्ष्मी का यंत्र)

लो यह लक्ष्मी यंत्र, कहा श्रीयंत्र इसे है ।
हुआ सर्व संपन्न, प्राप्त हो गया जिसे है ॥

लो यह लक्ष्मी - यंत्र,
कहा श्री यंत्र इसे है ।
हुआ सर्व सम्पन्न,
प्राप्त हो गया जिसे है ॥
हरिश्चन्द्र ने राज-
पाट निज खोया जब था ।
लोग ऋषी ने उन्हें,
यंत्र यह सौंपा तब था ॥
लक्ष्मी का आह्वान,
उन्हें विधिवत् समझाया ।
अल्पकाल में राज्य,
पुनः राजा ने पाया ॥
गुरु आज्ञा - अनुसार,
किया व्रत एक मास का ।
वातावरण विशुद्ध,
हो चला आस - पास का ॥
मित्रों का सहयोग,
बंधु - बांधव सम्मेलन ।
अर्पित सब कर चले,
इन्हें अपना तन मन धन ॥
कृष्ण पक्ष प्रतिपदा,
मास अगहन जब आया ।
व्रत पूजन प्रारंभ,
गुरुजनों ने करवाया ॥

बीता पूरा मास,
पूर्णिमा सुखद सुहाई ।
हुए अग्र कृतकृत्य,
दिवस था यह सुखदाई ।।
किया समापन; जुड़े,
मित्र सहयोगी वर थे ।
कुछ योद्धा रण कुशल,
बने इनके अनुचर थे ।।
जनस्थान की ओर,
एक अभियान किया था ।
प्रजा - वर्ग को किन्तु,
न किंचित कष्ट दिया था ।।
किया अधिकृत क्षेत्र,
नगर 'अग्रोक' बसाया ।
हुआ राज्य - अभिषेक,
नगर को गया सजाया ।।
थे जो हरिहर गौड़,
राज - नय न्याय निपुण थे ।
तप साधक विद्वान्,
सभी उनमें सद्गुण थे ।।
राज पुरोहित अतः,
उन्हीं को गया बनाया ।
प्रजा - हितैषी कार्य,
उन्होंने भी अपनाया ।।

अग्रोक = अग्रोहा का प्रारंभिक नाम ।

कुएँ, बावली, अन्य,
जलाशय गये बनाये ।
कहीं अवर्षण हुआ,
कि खेती सूख न पाये ।।
सड़कों का निर्माण,
चतुष्पथ की सुविधायें ।
करें वणिक व्यापार,
असुविधा कहीं न पायें ।।
बारह योजन क्षेत्र,
न भय का काम कहीं था ।
शासन कठिन कठोर,
रहा ठग एक नहीं था ।।
महलों की पंक्तियाँ,
गईं इस भाँति बनाई ।
दानव कुल की कला,
स्वतः लज्जित हो आई ।।
जन सुविधा के हेतु,
गली कूचों का क्रम था ।
आयें जायें कहीं,
न्यूनतम होता श्रम था ।।
कई फलों के प्रचुर,
बगीचे गये लगाये ।
रोक टोक थी नहीं,
प्रजा जी भर कर खाये ।।

दानव जाति वास्तुकला में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी ।

मंदिर विशद विशाल,
शताधिक जहाँ तहाँ थे ।
पुष्प - वाटिका स्वच्छ-
सरोवर बने वहाँ थे ।।
मध्य भाग में एक,
बना लक्ष्मी - मंदिर था ।
वहाँ वृहद श्रीयंत्र,
बनाया गया रुचिर था ।।
लक्ष्मी का वरदान,
मिला था अग्रराज को ।
था उसका जो सुफल,
बँटा सारे समाज को ।।
पण्य बनाये गये,
मिलीं सारी सुविधायें ।
दूर देश के वणिक,
न क्यों व्यापार बढ़ायें ।।
स्वर्ण, रत्न, भण्डार
भरा अग्रोक नगर में ।
हुआ कि था श्री यंत्र,
प्रतिष्ठित जब घर-घर में ।।
हाथी, घोड़े, ऊँट,
रथों की बाढ़ लगी थी ।
भरा अन्न - भण्डार,
न होती कहीं ठगी थी ।।

निशिदिन पूजा - पाठ,
यज्ञ की धूम मची थी ।
धर्म - कर्म विपरीत,
न रचना कहीं रची थी ।।
कमल - युक्त तालाव,
बनाये गये जहाँ थे ।
सारस, हंस, मयूर,
थिरकते सदा वहाँ थे ।।
समय समय पर यहाँ,
कई मेले भरते थे ।
नट, किन्नर की भीड़,
तमाशे वे करते थे ।।
मल्ल युद्ध था कहीं,
कहीं जादू का डेरा ।
देखा गया न किन्तु,
एक याचक का फेरा ।।
विद्वानों की भीड़,
भीड़ साधू संतों की ।
थी मेले में भीड़,
न कुछ कम सामंतों की ।।
दूर पास के यहाँ,
सभी व्यापारी आते ।
नव निर्मित कुछ वस्त्र,
और आभूषण लाते ।।

नहीं किसी का माल,
यहाँ था रुकने पाता ।
सब का सब सामान,
निरन्तर बिकता जाता ॥
चकित रहे सब देख,
अग्रपुर की यह शोभा ।
देखी धन - सम्पत्ति,
इन्द्र का भी मन लोभा ॥
नहीं सहन कर सका,
यहाँ की वह प्रभुताई ।
कर दी उसने अग्र-
देश पर अतः चढ़ाई ॥
देखा वैभव मात्र,
शक्ति का पता नहीं था ।
सहस्राक्ष था किंतु,
भूल कर गया यहीं था ॥
हर प्रकार सन्तुष्ट,
प्रजा रहती है जिसकी ।
नहीं किसी विधि कहीं,
हार होती है उसकी ॥
टिड्डी दल से टूट-
पड़े अग्रोहा - वासी ।
मुँह की खाई; लौट-
गया वह लिये उदासी ॥

अग्रपुर = अग्रोक (अग्रोहा) ।

निष्ठा से श्रीयंत्र,
जहाँ पूजा जाता है ।
वहाँ प्रबलतम शत्रु,
नहीं कुछ कर पाता है ॥
नारद मुनि आ गये,
उन्होंने संधि कराई ।
दो रिपुओं में बढ़ी,
मित्रता की गहराई ॥
वचन हुआ जब कभी,
किसी से लोहा लेंगे ।
साथ परस्पर एक-
दूसरे का ही देंगे ॥
जग में फैली बात,
हो चली पूजा - अर्चा ।
इसके पहले कौन,
अग्र की करता चर्चा ॥
वीर सुभोग्या मही,
यहाँ वीरों की पूजा ।
इससे बढ़कर मंत्र,
जगत में दिखा न दूजा ॥

अग्रोहा के प्रारंभिक अनेक नाम = अग्रोक, अग्रोदक, अग्रेय, आग्रेय । यह स्थान हरियाणा, जिला हिसार तहसील फतेहाबाद में, दिल्ली से सिरसा जानेवाली सड़क पर हिसारनगर से १३ मील की दूरी पर है ।

नागराज बलवंत,
कोल पुर के अधिकारी ।
उनके भी जब पड़ीं,
कान में बातें सारी ॥
था अवसर अनुकूल,
निमंत्रण भेजा उनको ।
राजाओ में न थे,
मान्यता देते जिनको ॥
वीरों का सम्मान,
वीर करते आये हैं ।
जहाँ न थी सद्बुद्धि,
भूप वे पछताये हैं ॥
सुता माधवी हुई-
सयानी रचा स्वयंवर ।
आमंत्रण के हेतु,
गये थे भेजे अनुचर ॥
उस क्रम में अब अग्र-
राज भी गये बुलाये ।
पद प्रतिभा अनुरूप,
साज - सज्जा से आये ॥

नागराज = ये सीदियन जाति के लोग थे। इनके यहाँ सर्प-पूजन प्रथा होने के कारण नाग-वंशी कहलाये। इनसे संबंध हो जाने के बाद अग्रवालों के यहाँ भी नाग-पूजा होनेलगी।

द्वीप - द्वीप के भूप,
सभी दिग्पाल पधारे ।
अग्र - रूप को देख,
रह गये सब हिय हारे ॥
चारण का उद्घोष,
"सुनें दिग्पाल महीश्वर ।
कन्या का आगमन,
हो रहा रंग भूमि पर ॥
है स्वतंत्र; वर - माल
गले जिसके डालेगी ।
सद् गृहिणी व्योहार,
साथ उसके पालेगी ॥"
चारण आगे चला,
दे चला परिचय उनका ।
पाणि - ग्रहण के हेतु,
आगमन जिनका जिनका ॥
थी माधवी सचेत,
सुन चुकी थी चर्चाएँ ।
अन्य भूप किस भाँति,
भला अब उसको भाएँ ॥
रूप रंग के धनी,
एक गज चौड़ी छाती ।
सुघड़ अंग प्रत्यंग,
मधुर मुस्कान सुहाती ॥

ऊँचा मस्तक; बनीं-
स्वस्थ आजानु भुजाएँ ।
अब क्या इससे अधिक,
और चाहें ललनाएँ ।।
पहुँची ज्योंहीं पास,
मिल गया परिचय उनका ।
दूर पास वर्चस्व,
इस समय छाया जिनका ।।
तत्क्षण आगे बढ़ी,
गले में डाली माला ।
लज्जावश नत हुई,
स्वतः को सजग सम्हाला ।।
और मुड़ी तत्काल,
भवन की ओर सिधारी ।
आगंतुक उठ चले,
लिये मन भारी-भारी ।।
आया मृग नक्षत्र,
मास बैसाख सुहावन ।
विधिवत हुआ विवाह,
हुए दोनों कुल पावन ।।
मुँह माँगा वरदान,
मिला था नागराज को ।
है कुलीन सम्पन्न,
पा लिया उस समाज को ।।

महीरथ = कोलपुर के राजा नागराज का नाम ।

हय, गज, रथ, धन-धान्य,
दास, दासी सुख साधन ।
थे मणि, मुक्ता-जड़ित,
दिये नाना उच्चासन ।।

रत्नों का भण्डार,
सम्पदा विविध अतोली ।
सजल हुए दृग; चली-
माधवी की जब डोली ।।

अग्रोदक आ गये,
जुड़ा सारा समाज था ।
इन्द्रपुरी से अधिक,
सुसज्जित नगर आज था ।।

राग रंग की धूम-
मची अग्रोक नगर में ।
थी उत्सव की होड़-
लगी इस क्षण घर-घर में ।।

परिजन पुरजन सभी,
बधाई देने धाये ।
नवल वधू के लिये,
भेंट थे सब ले आये ।।

सर्वोत्तम व्यौहार,
इन्द्र के द्वारा आया ।
परम सुसज्जित सुखद,
एक स्यन्दन पहुँचाया ।।

पाई जैसी सफलता, न थी किसी को आस ।
और बढ़ा श्रीयंत्र पर, जन जन का विश्वास ।।
जन जन का विश्वास, बढ़ चला अग्रराज पर ।
अब उनका वर्चस्व, बढ़ा सारे समाज पर ।।
लक्ष्मी का अवतार, माधवी घर में आई ।
क्या कम थी यह बात, विजय वासव पर पाई ।

——

स्यन्दन = रथ । वासव = इन्द्र ।

[२]

अहम्; भूल, कुछ कभी,
करा देता है ऐसी ।
कोल नगर में कई,
भूप कर बैठे जैसी ।।
वर माला जब पड़ी,
भद्रता नहीं दिखाई ।
उठे न आर्य पास,
नहीं दी गई बधाई ।।
बनी योजना एक,
हुआ अभियान कठिनतर ।
कुछ द्वीपों पर हुई,
चढ़ाई एक एक कर ।।
पहले देखा उन्हें,
अहम् था जिनको भारी ।
निकल पड़े थे; नगर-
व्यवस्था कर के सारी ।।
जिन भूपों ने किया-
सामना वे सब हारे ।
शक्ति-हीन नृप; देश-
छोड़ भागे बेचारे ।।

शस्त्र समर्पण किया,
उन्हें वरदान दे दिया ।
राज्य उन्हीं का रहा,
मात्र आधीन कर लिया ॥
क्रमशः आगे बढ़े,
अठारह द्वीप किये जय ।
थी अनुशासित सैन्य,
रहा जन मानस निर्भय ॥
सत्रह किये विवाह,
विजित राज्यों से आई ।
सुमुखि माधवी सहित,
अठारह कुल कहलाई ॥
करते चले नियुक्त,
हर जगह वे अधिकारी ।
थे जो अति विश्वस्त,
प्रजा के सुख संचारी ॥
लगे डेढ़ दो वर्ष,
सफलता अच्छी पाई ।
लौट रहे थे; जगह-
जगह पर मिली बधाई ॥
थे अब तक जो दूर,
पास आते जाते थे ।
रहें अग्र के मित्र,
भला इसमें पाते थे ॥

अग्रोदक आ गये,
धूम थी विजयोत्सव की ।
लगी सिमटने यहाँ,
सम्पदा सारे भव की ॥
दूर पास के भूप,
भेंट बहुमूल्य दे गये ।
थे मैत्री का वचन,
साथ में सुखद ले गये ॥

पाई है इस जगत में, यही प्रीति की रीति ।
उगते सूरज को नमन, सुर मुनि नर की रीति ॥
सुर, मुनि, नर, की रीति, रही है यहाँ पुरानी ।
सत्य कथन में करे, न कोई आना - कानी ॥
है प्रमाण पर्याप्त, राम - सुग्रीव मिताई ।
नहीं कहीं निःस्वार्थ, मित्रता हमने पाई ॥

[३]

वर्ष अनेकों बीत-
गये; थे सभी सुभीते ।
हुआ अवर्षण एक,
खेत अब सब थे रीते ॥

बाग, बगीचे, झाड़-
पेड़ मुर्झाये वन थे ।
उपज वहाँ थी; जहाँ,
सिंचाई के साधन थे ॥
निर्धन हुए किसान,
नगर की ओर सिधाये ।
त्राहिमाम् कर उठे,
राव के द्वारे आये ॥
मत पूछो इस समय,
अन्न की हृदय विकलता ।
अब तक मिलती गई,
जिसे चहुँ ओर सफलता ॥
प्रजा-वर्ग की पीर,
नहीं देखी जाती थी ।
रात-रात भर नींद,
नहीं उनको आती थी ॥
सूझा एक उपाय,
काम पर गये लगाये ।
जो भी आते गये,
निठल्ले बैठ न पाये ॥
जन-हित में आवास,
बना डाले कुछ इतने ।
आजायें अब श्रमिक,
यहाँ पर चाहे जितने ॥

राज-कोष खुल गया,
अन्न - भण्डार लुटाये ।
भूखा रहे न एक,
कहीं से कोई आये ॥
लिया गया संकल्प,
अठारह यज्ञ करेंगे ।
जलाभाव कर दूर,
प्रजा की पीर हरेंगे ॥
मिले अठारह द्वीप,
अठारह थीं भार्याएँ ।
इसीलिये थी सूझ,
अठारह यज्ञ रचाएँ ॥
यत्र - तत्र सर्वत्र,
निमंत्रण भेज दिया था ।
वासव ने भी जिसे,
समुद स्वीकार किया था ॥
आकांक्षा थी यज्ञ,
सभी पूरे कर पायें ।
करे न इन्द्र विरोध,
चक्रवर्ती कहलायें ॥
पूरे सत्रह यज्ञ,
कर लिये हुई न बाधा ।
रुका कार्यक्रम; हुआ-
अठारहवाँ जब आधा ॥

वासव = इन्द्र ।

वैश्य - धर्म को याद,
अचानक उनको आई ।
हुआ अत्यधिक खेद,
हृदय में ग्लानि समाई ॥
थी शिक्षा दी गई,
अहिंसावादी होना ।
जीव मात्र के हेतु,
कष्ट के बीज न बोना ॥
किन्तु यहाँ तो जीव,
नित्य जाते हैं मारे ।
धर्म - कर्म - विपरीत,
आज हम हैं हत्यारे ॥
अतः रोक दो यज्ञ,
उन्होंने आज्ञा दे दी ।
जीव, जन्तु - हित - हेतु,
शपथ उस दिन से ले ली ॥
बन्द करो बलि - प्रथा,
नगर में हुई मुनादी ।
होने पाये कहीं,
न पशु-धन की बर्बादी ॥
इस निर्णय से हुए,
प्रभावित सभी ऋषीश्वर ।
रुके हुए थे अभी,
सभी दिग्पाल महीश्वर ॥

रहा इन्द्र अनुकूल,
घोषणा कर दी उसने ।
किया यज्ञ सर्वोच्च,
बलि - प्रथा रोकी जिसने ॥
अतः उन्होंने आज,
चक्रवर्ती पद पाया ।
हुआ न कहीं विरोध,
सभी के मन को भाया ॥

समय समय की बात है, रहे भाग्य अनुकूल ।
पाँव तले के गोखरू, बन जाते हैं फूल ॥
बन जाते हैं फूल, न काँटा उसे गड़ा है ।
जिसके सम्मुख एक, अहिंसा धर्म बड़ा है ॥
बाधायें हों लाख, न रहती छाया भय की ।
फिर भी आओ कहें, बात है समय समय की ॥

❀❀❀

[४]

सद् गृहस्थ शुचि धर्म,
कर सके जो नर पालन ।
उसका कभी न क्षीण,
हुआ करता तन मन धन ॥
पटरानी थी एक,
मात्र 'माधवी' सयानी ।
परम्परागत रीति-
नीति थी सबकी जानी ॥
सकल यज्ञ में साथ-
रहे; थी कहीं न बाधा ।
किन्तु अन्न ने सभी,
रानियों का मन साधा ॥
किये अठारह यज्ञ,
साथ में एक-एक के ।
थे विद्वद्जन सभी,
प्रशंसक नृप विवेक के ॥

इस निर्णय से प्रजा-
प्रवर परिजन हर्षाये ।
भार्याओं के नाम,
गये इस भाँति बताये ॥
नाग - सुता 'माधवी',
'सुन्दरावती' सयानी ।
'चित्रा', मित्रा', 'शुभा',
कि 'शीला', 'शिखा', 'भवानी' ॥
'शान्ता', 'रम्भा', 'रत्ना',
'चरा', 'सरसा' सद् ज्ञानी ।
'शिरा', 'शची' फिर 'सखी',
'समा', 'धनपाला' दानी ॥
मिल जायें यदि कहीं,
चरण-रज ले लें उनकी ।
पूर्वज अपने रहे,
कोख में जिनकी जिनकी ॥
जनपद इनके रहे,
अठारह 'कुल' कहलाये ।
इन्हीं कुलों के गये,
अठारह गोत्र बनाये ॥

सुन्दरावती तथा धनपाला ये दो नाम भंडारी-द्वारा लिखित अग्रवाल जाति का इतिहास प्रथम भाग से शेष लक्ष्मी व्रत कथा से लिये गये हैं ।

सुन्दरावती परमराहर के राजा सुन्दर सेन की और धनपाला चम्पावती के राजा धनपाल की पुत्री थी ।

वर्जित हुआ विवाह,
सगोत्री उसी समय से ।
बचा लिया इस भाँति,
संघ को विघटन - भय से ॥
होंगे जब संबंध,
हमारे दूर देश से ।
परिचित होंगे रहन-
सहन से और वेष से ॥
रीति रस्म हम उन्हें,
हमें वे सिखलायेंगे ।
दुख सुख में सहयोग,
परस्पर सब पायेंगे ॥
तो फिर अपने प्रेम-
भाव बढ़ते जायेंगे ।
सारे जनपद एक,
किसी दिन कहलायेंगे ॥
हैं गोत्रों के नाम,
'गर्ग', 'गोयल' फिर 'कच्छल' ।
'ढावण', 'वात्सिल', 'गवन',
कि 'बंसल', 'तुंगल', 'मंगल' ॥
'मुद्गल', 'नांगल' तथा,
सु 'कांसल', 'जिन्दल', 'मित्तल' ।
'एरण', 'तायल' और,
कहें दो 'विंदल', 'सिंहल' ॥

तीन - तीन सुत सभी,
रानियों ने थे जाये ।
उनके सबके नाम,
गये इस भाँति गिनाये ॥
प्रथम अठारह ज्येष्ठ,
हुए जनपद अधिकारी ।
भेज दिये थे वहाँ,
व्यवस्था देखें सारी ॥
'विभु', 'गेंदूमल' हुए,
हुए 'मणिपाल' मनस्वी ।
'करणचन्द' फिर 'वृन्द-
देव' थे परम यशस्वी ॥
एक 'सिंधुपति' जहाँ,
अकेले डट जाते थे ।
बड़े - बड़े रण - शूर,
न सम्मुख टिक पाते थे ॥
'कुण्डल', 'ताराचन्द',
उद्यमी थे व्यापारी ।
'वासुदेव' का काम,
चीन तक फैला भारी ॥

ज्येष्ठ पुत्रों के अठारह नामों में दो नाम विभु और कुण्डल लक्ष्मी व्रत कथा से, शेष सोलह नाम भण्डारी-द्वारा लिखित अग्रवाल जाति का इतिहास प्रथम भाग से लिये गये हैं। इनके अतिरिक्त छत्तीस नाम लक्ष्मी व्रत कथा के हैं।

'गोधर', 'ढावणदेव',
'मंत्रपति' थे अतिदानी ।
'जैत्रसंध', 'तम्बोल-
कर्ण' थे ज्ञानी - ध्यानी ॥
'नारसेन' थे 'वीर-
भानु' पितु आज्ञाकारी ।
हुए 'ऐन्द्रमल' एक,
प्रजा के सुख-संचारी ॥
थे जो 'माधवसेन',
दयासागर सुजान थे ।
वेद शास्त्र के धनी,
नम्र थे ज्ञानवान थे ॥
उपर्युक्त जो नाम,
अभी हैं गये गिनाये ।
हर जनपद में एक-
एक शासक कहलाये ॥
रहे शेष छत्तीस,
नाम वे भी अब सुन लो ।
उनके मानव धर्म-
कर्म अन्तर में गुन लो ॥
'बली', 'विरोचन', 'दवन',
'विरण', 'माली', 'विकास' थे ।
'केशव,' 'पावक', 'अनिल',
'वपुन', 'वाणी', 'विशाल' थे ॥

'धन्नी', 'धामा', 'सुन्द',
'पलश', 'मन्दोकन', 'धर' थे ।
'कुश', 'विनोद' थे 'नन्द',
'पयोनिधि' और 'प्रखर' थे ॥
'दाड़िमदन्ती', 'कुन्द',
'कुकुंबक', और 'शांति' थे ।
'रव', 'शुभ', 'मल्लीनाथ',
'विलासद' तथा 'कान्ति' थे ॥
'पामा' थे, थे एक,
'क्षमाशाली' उद्योगी ।
'हर' थे और 'कुमार',
सदा बचपन से योगी ॥
आओ श्रद्धा सहित,
नमन कर लें हम उनको ।
अग्र - वंश की वृद्धि,
श्रेय जाता है जिनको ॥
हर रानी ने एक-
एक कन्या को जाया ।
उन नामों को गया,
हमें इस भाँति सुनाया ॥
'कान्ती', 'शांती', 'दया',
'तितिक्षा' थी, 'अधरा' थी ।
'रमा', 'यामिनी', 'शिवा',
'अर्जिका' थी, 'अमला' थी ॥

'पुण्या', 'रामा', 'मही',
'अमृता', 'कला', 'शुभा' थी ।
और कि 'जलदा' एक,
और फिर एक 'शिखा' थी ॥
हर प्रकार सम्पन्न,
सभी के रहे घराने ।
क्षेत्र क्षेत्र के प्रमुख,
प्रतिष्ठित जाने - माने ॥

आये जो इस जगत में, गये राव या रंक ।
कुछ यश लेकर के गये, कुछ ले गये कलंक ॥
कुछ ले गये कलंक, न वे कर पाये ऐसा ।
उस युग में बन पड़ा, अग्र राजा से जैसा ॥
गये हजारों वर्ष, उन्हें हम भूल न पाये ।
लिये साथ सत् कृत्य, अमर होकर के आये ॥

कन्याओं के अठारह नाम लक्ष्मी व्रत कथा के श्लोक ४६ तथा ४७ से लिये गये हैं ।

[५]

सुन्दरतम उस अग्र-
नगर का ऐसा क्रम था ।
जिसे देखकर देव-
लोक का होता भ्रम था ।।
दूर देश के बणिक,
यहाँ जो भी आते थे ।
सुख सुविधाएँ देख,
यहीं पर बस जाते थे ।।

और उन्हीं के साथ,
लोग ऐसे भी आये ।
जन्मस्थल से नहीं,
साथ कुछ भी ला पाये ।।
उन लोगों के लिए,
व्यवस्था नई बनाई ।
सब से मुद्रा एक,
ईंट थी एक दिलाई ।।
सवा लाख इस भाँति,
ईंट वे पा जाते थे ।
अच्छा सा घर एक,
इसी से बनवाते थे ।।
थीं मुद्राएँ सवा-
लाख व्यापार चल गया ।
उनका भी इस भाँति,
दुःख दारिद्र गल गया ।।
इतना बड़ा समाज-
वाद क्या और कहीं था ।
जन जन का सहयोग,
अतः बन पड़ा यहीं था ।।
इसी प्रथा को देख,
बाढ़ बस्ती की आई ।
नव आगत के हेतु,
न थी धरती बच पाई ।।

अतः उपक्रम किया,
हिमालय तक चढ़ धाये ।
पूर्व दिशा की ओर,
बढ़े गंगा तट आये ।।
थी दक्षिण में मार-
वाड़ की सीमा बाँधी ।
यमुना तट तक गई,
अग्र - गण - पति की आँधी ।।
अनुशासन था चुस्त,
सैन्य बल सर्वोपरि था ।
अतः न सम्मुख टिका,
एक भी कोई अरि था ।।
था श्रम साहस साथ,
बढ़ा ली सीमा इतनी ।
आयें आकर बसें,
बस्तियाँ चाहे जितनी ।
विजित अठारह द्वीप,
वहाँ भेजा था उनको ।
ज्येष्ठ सुतों में योग्य,
जहाँ के समझा जिनको ।।

उपरोक्त की पंक्ति ४ में गंगा के स्थान में यमुना तथा पंक्ति ७ में यमुना के स्थान में गंगा पढ़ना चाहिये ।

द्वीप = नगर अथवा जनपद ।

पाठ ४ में जो गोत्रों के नाम दिये गये हैं, उनमें स्थान, भाषा तथा उच्चारण भेद के कारण अपनी मान्यता के अनुसार सुधार लें ।

जैसे—गवन = गोयन । ढावण = धारण । मुद्गल = मधुकुल । वात्सिल = मंदल । तुंदल = तिंदल । कच्छल = कुच्छल ।

उन द्वीपों में एक,
प्रथम 'अग्रोहा' आया ।
'नंगल' 'नारी नवल',
'जींद' 'गढ़वाल' सुहाया ।।
थे 'मेरठ' 'गुड़गांव',
'कांगड़ा' था अति पावन ।
'पानीपत' 'करनाल',
'लुहारू' थे मन भावन ।।
'हांसी' 'मंडी' तथा,
'रोहतक' बस्ती न्यारी ।
'इन्द्रप्रस्थ' ले लिया,
'आगरा' सुख संचारी ।।
था 'बिलासपुर' लिया,
'अग्रपुर' को अपनाया ।
हुए अठारह नगर,
इन्हीं का संघ बनाया ।।

नारी नवल = नारनौल । जींद = जींद सफ़ीदस । मेरठ = मयराष्ट्र । गुड़गाँव = गौड़ ग्राम । काँगड़ा = कोट काँगड़ा (नगर कोट) । पानीपत = पुण्य पत्तन । लुहारू = लक्को । हाँसी = हाँसी-हिसार । रोहतक = रोहिताश्व । इन्द्रप्रस्थ = दिल्ली । अग्रपुर = रावी और चिनाव नदियों के मध्य, सिंध नदी के निकट, जहाँ पर सिकन्दर ने अग्रश्रेणियों से युद्ध किया था । इस युद्ध का उल्लेख रतिभानु सिंह नाहर ने अपनी पुस्तक, 'प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास' में किया है ।

अब जो आई भूमि,
राज्य छत्तिस बन पाये ।
एक एक के राव,
सभी सुत गये बनाये ॥

आते हैं जब तब यहाँ, नर पुंगव रण - धीर ।
साहस दुःसाहस लिये, लोक - हितैषी वीर ॥
लोक - हितैषी वीर, जन्म से पर हितकारी ।
काम कठिन से कठिन, न लगता उनको भारी ॥
ऐसे मानव यदा, कदा ही हैं आ पाते ।
युगों युगों के बाद, अग्र - से राजा आते ॥

[६]

समय ठहरता नहीं,
तीव्र गति से चलता है ।
जो भी चूका समय,
हाथ निशिदिन मलता है ॥
वर्ष एक सौ आठ,
हो गये शासन करते ।
जीवन हुआ व्यतीत,
कष्ट जनता के हरते ॥

रही चतुर्दिक शांति,
लेश थी कहीं न बाधा ।
पुत्रों का चातुर्य,
कार्य था समुचित साधा ॥
था निर्णय ले लिया,
अतः अब चौथे पन में ।
जुटें मोक्ष के हेतु,
प्रभू के आराधन में ॥
हुए सभी एकत्र,
पुत्र, परिजन पुरजन थे ।
था विछोह का समय,
सभी के भारी मन थे ॥
कहा अग्र ने, "प्रजा,
पुत्र सम रही हमारी ।
और पुत्र हैं सभी,
हमारे आज्ञाकारी ॥
हैं वे सकल समर्थ,
राज्य के संचालन में ।
दया, धर्म, कुल-रीति,
राज - नय के पालन में ॥
अतः लिया संकल्प,
वान - प्रस्थाश्रम जाऊँ ।
थोड़ा जीवन शेष,
शांति से उसे बिताऊँ ॥

गोरक्षण, द्विज - प्रीति,
अहिंसा धर्म हमारा ।
पालन इनका करो,
बना कर्तव्य तुम्हारा ॥
करो प्रतिज्ञा सदा,
निरामिष भोजन लेंगे ।
किसी जीव की कहीं,
न हत्या होने देंगे ॥
वर्जित लहसुन, प्याज,
रहे दैनिक भोजन में ।
इनसे तामस - वृद्धि,
हुआ करती तन - मन में ॥
सात्विक भोजन सदा,
स्वस्थ रखता है तन को ।
बुद्धि - वृद्धि के साथ,
शांति मिलती है मन को ॥
है वह जीवन व्यर्थ,
स्वास्थ्य यदि सही नहीं है ।
ऐसे नर की पूछ,
जगत में नहीं कहीं है ॥
रखो दूर अभिमान,
सँजोकर स्वाभिमान को ।
आदर देना साधु-
संत को ज्ञानवान को ॥

भय शंकास्थल मध्य,
कभी आवास न होवे ।
रहो जहाँ परिवार,
अशंकित निर्भय सोवे ।।
चिन्ता के तुम बीज,
न ऋण लेकर के बोना ।
इसके कारण कभी,
न होगा सुख से सोना ।।
बोलो सत्य सम्हाल,
न अप्रिय होने पावे ।
लेना - देना न कुछ,
दुखी कोई हो जावे ।।"
कहते - कहते गला,
अग्र का था भर आया ।
था कुछ कहना शेष,
धीर का साथ न पाया ।।
किया राज्य-अभिषेक,
ज्येष्ठ सुत विभु का तत्क्षण ।
पाये जिसमें गये,
सफल शासक के लक्षण ।।
धन्य हुई बैसाख-
मास की पूरन मासी ।
अधिकारी संतुष्ट,
मुदित अग्रोहा वासी ।।

सत् संगति हो नित्य,
न इससे वंचित होना ।
मोक्ष-प्राप्ति के बीज,
भजन - पूजन से बोना ।।
वह विद्या बहुमूल्य,
कराये द्रव्य उपार्जन ।
बिना द्रव्य के नहीं,
हुआ करता प्रभु - पूजन ।।
किन्तु रहे यह ध्यान,
कमाई सच्ची करना ।
अनुचित आई राशि,
न तुम गल्ले में धरना ।।
हो जिसकी; वह उसे,
तुरत जाकर लौटाओ ।
अथवा कर दो दान,
न रखकर पाप कमाओ ।।
याचक बनकर कभी,
किसी के द्वार न जाना ।
चाहे भूखे पेट,
रात में तुम सो जाना ।।
अन्तर्तम् की व्यथा,
किसी से कहीं न कहना ।
लेगा कोई बाँट,
भूल में कभी न रहना ।।

और कि अब चल पड़े,
व्यवस्था करके सारी ।
रही माधवी साथ,
रहा जन गन मन भारी ।।
क्षेत्र ब्रह्मसर और,
पंच गोदावरि तट का ।
सुविधा - दायक चुना-
गया थल वहीं मयट का ।।

आ जाते हैं धरणि पर, कभी कभी कुछ लोग ।
सहज सुलभ होता जिन्हें, है अनन्त सुख - भोग ।।
है अनन्त सुख - भोग, उसे भोगेंगे ऐसे ।
कमल - पत्र निर्लिप्त, वारि पर रहता जैसे ।।
संज्ञा वे अवतार, पुरुष की हैं पा जाते ।
जो पर - हित के हेतु, यहाँ पर हैं आ जाते ।।

———

मयट = कुटी अथवा आश्रम ।

[७]

अग्र सुशासन रहा,
राज्य अब 'विभु' का आया ।
नहीं किसी को कष्ट,
कहीं कोई हो पाया ।।
यदि कोई सम्पन्न,
व्यक्ति निर्धन हो जाता ।
मुद्राएँ वह एक,
लक्ष था नृप से पाता ।।
इससे वह उद्योग,
पूर्ववत कर लेता था ।
समय पड़े सहयोग,
दूसरों को देता था ।।
'विभु' के भाई सभी,
राज-नय निपुण न कम थे ।
जन - सेवा के हेतु,
अधिकतम करते श्रम थे ।।

ऐक्य परस्पर रहा,
कीर्ति बढ़ चली निरंतर ।
अग्र - वंश था देव-
तुल्य इस क्षण पृथ्वी पर ।।
विधि का अमिट विधान,
कि जो आया जायेगा ।
करनी के अनुसार,
फलाफल वह पायेगा ।।
पूर्ण हुए सौ साल-
रहा शासन से नाता ।
'विभु' को भी कर उठा,
एक दिन याद विधाता ।।
हर प्रकार के सुयश,
भरे झोली में उसकी ।
पर - उपकारी वृत्ति,
रहा करती थी जिसकी ।।
पटरानी को नहीं,
जगत में रहना भाया ।
उसी चिता में बैठ,
पंथ पति का अपनाया ।।
था उसका सुत 'नेमि-
नाथ' शासन - अधिकारी ।
वह हिमगिरि की ओर,
बढ़ा सेना ले भारी ।।

किये अधिकृत क्षेत्र,
कई थे आगे बढ़कर ।
शक्ति लगी पर मिली-
विजय 'नेपाल' नगर पर ।।
नेमिनाथ का पुत्र,
'वृन्द' वृन्दावन आया ।
कृष्णचन्द्र की भूमि,
सुपावन; पुनः बसाया ।।
धर्म धनी था यज्ञ-
कई उसने कर डाले ।
वृन्दावन की राज्य-
डोर भी रहा सम्हाले ।।
'गुर्जर' उसका पुत्र,
हुआ 'गुर्जर' अधिकारी ।
धर्म कर्म में नाम,
दूर तक फैला भारी ।।
'नेमिनाथ' के बाद,
'विमल' की आई पारी ।
फिर आये 'शुकदेव',
वेद विद्या अधिकारी ।।
गये कि जब 'शुकदेव'
'धनञ्जय' सुत था आया ।
इसने भी शुचि पंथ,
पूर्वजों का अपनाया ।।

गुर्जर = वर्तमान गुजरात ।

इसका सुत 'श्रीनाथ',
बाद में हुआ महीश्वर ।
चले गये 'श्रीनाथ',
भूप था पुत्र 'दिवाकर' ।।
त्यागा वैष्णव धर्म,
जैन मत को अपनाया ।
दस लक्षण का मंत्र,
उसे था अधिक सुहाया ।।
मत कोई हो; राज-
धर्म जब बन जाता है ।
जन मानस भी उसे,
अधिकतम अपनाता है ।।
मूल धर्म से नाम-
मात्र का ही था अन्तर ।
जैन पंथ इसलिये,
फैलता गया निरन्तर ।।
इस प्रकार दो हुईं,
अग्र - कुल की शाखाएँ ।
कुछ को भाया यही,
कि अब वे जैन कहाएँ ।।

दस लक्षण का मंत्र = धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, अचौर्य, शुभाचरण, इन्द्रिय संयम, विवेक, विद्या, सत्य, अक्रोध ।

किन्तु एक ही रहे,
पंथ बस अलग - अलग थे ।
एक प्राण थे, एक जाति थे,
नहीं विलग थे ।।
और आज हैं एक,
न दो में भेद कहीं है ।
हम दोनों में पंथ-
भेद का खेद नहीं है ।।
हर मानव का धर्म,
एक है सत्य अहिंसा ।
पावन हो व्यवहार,
धर्म की है यह मंसा ।।
देकर यह संदेश,
'दिवाकर' गये जगत से ।
और 'सुदर्शन' हुए,
भूप जनता के मत से ।।
किन्तु राज्य - जंजाल,
नहीं था उनको भाया ।
दिया सुतों को भार,
स्वतः मुनि - पथ अपनाया ।।
गंगा - तट जा बसे,
रुची थी उनको 'कासी' ।
अग्रवंश का भूप,
हो गया यों संन्यासी ।।

और कि अब 'श्रीनाथ'-
पुत्र गद्दी पर आया ।
'महादेव' शुभ नाम,
पिता माता से पाया ।।
परम अहिंसावाद,
मंत्र रहता था उसका ।
युद्ध क्षेत्र में शत्रु,
मानते लोहा जिसका ।।
'महादेव' के पुत्र,
'यमाधर' का अब शासन ।
जन हित में जो सदा,
लुटाता था तन मन धन ।।
उसके तनय 'शुभांग',
'मलय' क्रमशः दो शासक ।
'वसु' आया; विख्यात-
हुआ जो शत्रु विनाशक ।।
'वसु' के पुत्र अनेक,
आठ शाखायें इनकी ।
अष्ट दिशा में बोल-
उठी थी तूती जिनकी ।।
और कि इसके बाद,
'मलय'-सुत 'नन्दी' आया ।
था जब 'नन्दी' गया,
'विरागी' ने पद पाया ।।

फिर थे शासक, हुए
'चन्द्रशेखर' बलशाली ।
'अग्रचन्द्र' सुत हुआ,
राज्य की डोर सम्हाली ।।
उद्योगों को सदा,
बढ़ावा वह देता था ।
नहीं राज्य कर अधिक,
किसी से भी लेता था ।।
इसका शासन काल,
स्वर्ण युग कहलाता था ।
रिपु कोई हो; पार-
नहीं इससे पाता था ।।
कई आक्रमण हुए,
शत्रु कितने ही आये ।
गली न उनकी दाल,
गये सब मार भगाये ।।
विजय गर्व में चूर,
'सिकन्दर' था चढ़ धाया ।
'नगर कोट' में घुसा,
उसे आमूल मिटाया ।।
था 'अग्रोहा' दूर,
सूचना जब तक आई ।
मनुज मात्र की छाँह,
न थी तब तक बच पाई ।।

युद्ध यहाँ जो हुआ,
हार में जीत कहेंगे ।
यद्यपि बंधु - विछोह,
शोक आजन्म सहेंगे ।।
हार गये, मिट गये,
शत्रु की कमर तोड़ दी ।
ऐसी मारी मार,
युद्ध की दिशा मोड़ दी ।।
'व्यास' नदी कर पार,
बढ़े; था अभी इरादा ।
थका 'सिकन्दर' किन्तु,
युद्ध पर था आमादा ।।
सेना ने विद्रोह,
कर दिया, बात न मानी ।
दिया प्रलोभन किन्तु,
न चल पाई मनमानी ।।
आया सेनाध्यक्ष,
सिकन्दर को समझाया ।
जासूसों का कथन,
शब्दशः उसे सुनाया ।।
वहाँ सवा दो लाख,
खड़ी है सज्जित सेना ।
पड़ सकता है उधर,
हमें लेने का देना ।।

'ढावण' गोत्री सभी,
यहाँ के शूरवीर थे ।
फरसे, बल्लम, चले,
बरसते कहीं तीर थे ।।
किया सामना खूब,
छकाया शत्रु प्रबल को ।
रहा आत्म-बल; काट-
गिराया आधे दल को ।।
सभी सूरमा कटे,
कट गये युवक सभी थे ।
किन्तु शत्रु खूँखार,
अघाये नहीं अभी थे ।।
बूढ़े, बच्चे, रुग्ण,
काट दी सबकी काया ।
था जौहर का मार्ग,
स्त्रियों ने अपनाया ।।
अपना 'ढावण' गोत्र,
लुप्त हो गया यहीं से ।
पता न अब तक मिला,
एक का हमें कहीं से ।।

ढावण गोत्री = धारण गोत्र । नगर कोट = काँगड़ा (कोट काँगड़ा) ।

हाथी तीन हजार,
खड़े रथ दो हजार हैं।
सैनिक बीस हजार,
हठीले घुड़सवार हैं॥
चार - चार हैं अश्व,
रथों में जोते जाते।
कवच सुमण्डित; शस्त्र-
नहीं उन पर चल पाते॥
हैं पैदल दो लाख,
शक्ति रखते हैं इतनी।
अभी आज ही यहीं,
देख ली हमने जितनी॥
संख्या तीस हजार,
पड़ गई हमको भारी।
तहस नहस हो गई,
हमारी सेना सारी॥
अपने सैनिक शूर,
युद्ध के जो मतवाले।
आज यहाँ हो गये,
मौत के सभी हवाले॥
बची हुई जो सैन्य,
भरोसा इस पर करना।
समझ लीजिये; जान-
बूझ कर होगा मरना॥

थकित न कम था स्वतः,
स्वास्थ भी नरम गरम था।
सेना का रह गया-
नहीं अनुशासन क्रम था॥
अतः मान ली बात,
वतन की ओर सिधारा।
विश्व-विजय का ध्वस्त-
हुआ मनसूबा सारा॥
'झेलम' पहुँचा और,
उतारीं नावें उसने।
'सिंधु नदी' की राह,
चुनी जाने की जिसने॥
किन्तु युद्ध से अभी,
न छूटा पीछा उसका।
बुरी तरह दिल तोड़-
दिया सेना ने जिसका॥
चलते - चलते वहाँ,
'अग्रपुर' तक था आया।
'तुंगल' गोत्री शूर,
सामना उनका पाया॥
योद्धा बीस हजार,
अश्व पर सजे सजाये।
थे चालीस हजार,
पदातिक सम्मुख आये॥

तुंगल=तिगल।

संख्या कम थी; किन्तु,
व्यूह रचना की खूबी ।
रिपु की आधी सैन्य,
नदी में ही ले डूबी ।।
चार ओर से मार-
पड़ी अरि - दल थर्राया ।
तीन दिशा में कौन,
कहाँ है पता न पाया ।।
खाई, खन्दक और,
उच्च टीले थे ऐसे ।
छिप कर करते वार,
देख पाता वह कैसे ।।
मरा एक जब इधर,
चार उसके मरते थे ।
सफल शस्त्र संचार,
प्राण रिपु के हरते थे ।।
कुछ भी हो पर रहा,
अधिक संख्या का अन्तर ।
बढ़ते ही हम गये,
शून्य की ओर निरन्तर ।।
थी रक्तिम हो गई,
नदी की निर्मल धारा ।
कण कण पृथ्वी लाल,
दिखी जिस ओर निहारा ।।

सारे योद्धा कटे,
कट गये घोड़े सारे ।
अब घर–घर में घुसे,
मनुजता के हत्यारे ।।
बूढ़े, बच्चे नहीं,
एक को छोड़ा उसने ।
मानवता का पाठ,
पढ़ा था कभी न जिसने ।।
कोना - कोना कौन,
कहाँ तक देखे - भाले ।
सारी बस्ती अतः,
अग्नि के हुई हवाले ।।
हुआ राख का ढेर,
नहीं था कुछ बच पाया ।
मिट्टी में मिल गया,
न फिर जा सका बसाया ।।
'तुंगल' गोत्री मिटे,
यहाँ सारे के सारे ।
इस प्रकार निःशेष,
हुए दो गोत्र हमारे ।।
खोये जो दो गोत्र,
दुःख है हमको इसका ।
विश्व-विजय का किन्तु,
मिटाया सपना उसका ।।

'ढावण' को ही श्रेय,
दीजिये इसका सारा ।
था उनका ही त्याग,
देश जो बचा हमारा ॥

ब्यास नदी कर पार,
इधर यदि वह आ पाता ।
सोलह जनपद तहस-
नहस तो कर ही जाता ॥

जीत हार की बात,
आज हम कह दें कैसे ।
तैयारी में कमी,
नहीं थी अपनी वैसे ॥

कुछ भी होता किन्तु,
न कम होती बर्बादी ।
मारी - मारी इधर,
उधर फिरती आबादी ॥

'ढावण' 'तुंगल' गोत्र,
काम आ गये समय पर ।
करें उन्हें भी याद,
जयन्ती के अवसर पर ॥

ढावण = धारण । तुंगल = तिंगल ।

होते रहें कृतज्ञ,
सदा हम इस प्रकार से ।
जुड़े रहें इस भाँति,
बंधु के अमिट प्यार से ॥

वैसे तो दुख कम नहीं, मिटे सर्व के सर्व ।
बनी कथा वीरत्व की, है हमको यह गर्व ॥
है हमको यह गर्व, वंश की लाज न खोई ।
करते हैं सामुख्य, शत्रु हो कैसा कोई ॥
होता है कुल धन्य, लाल जन्में जब ऐसे ।
प्रकृति जन्य है शोक, भ्रातृ बिछुड़न का वैसे ॥

[८]

गये सैकड़ों साल,
सिकन्दर बिदा ले गया ।
भरा न था वह घाव,
हमें उस समय दे गया ॥
था अपना विश्वास,
सदा स्वातंत्र्य - सृजन में ।
थी इसकी ही टीस,
रुद्र दामन के मन में ॥
अतः चल पड़ा; नार-
नौल पर घेरा डाला ।
एरण गोत्री शूर,
पड़ गया उनसे पाला ॥

घाव = वह जो सिकन्दर हमारे दो गोत्र समाप्त कर गया था ।
रुद्र दामन = शक जाति का क्षत्रप (उज्जैन का राजा); कुषाणों का सहायक ।

शक थे और कुषाण,
अत्यधिक जो जन-बल में ।
आधे से कुछ न्यून,
इधर थे एरण दल में ॥
फिर भी मारी मार,
छुड़ाये उनके छक्के ।
थे उज्जैनी वीर,
रह गये हक्के - बक्के ॥
लिये वीरता मात्र,
कहाँ तक ये लड़ पाते ।
इनके सैनिक वीर,
निरन्तर घटते जाते ॥
क्रमशः होने लगा,
हार का भान उन्हें था ।
पीछे हटना नहीं,
गवारा कभी जिन्हें था ॥
डटे रहे पर हुआ,
वही जो कुछ था होना ।
अर्ध सैन्य से हाथ,
पड़ा रिपु को भी धोना ॥
एक - एक कर खेत-
रहे जब योद्धा सारे ।
छोटे बच्चे, वृद्ध,
न बच पाये बेचारे ॥

थी जौहर की प्रथा,
कांगड़ा ने जो डाली ।
नारि - जगत ने वही,
राह थी यहाँ सम्हाली ।।
सद्यः जन्मा लाल,
उसे धरती पर डाला ।
जननी ममता त्याग,
भगी जौहर कर डाला ।।
गौड़ ब्राम्हणी एक,
रहा करती जो घर में ।
प्रभु - प्रदत्त थी सूझ,
उसे सूझी पल भर में ।।
बड़ा कठौता लिया,
उसी से ढाँक दिया था ।
दिखा जिधर सुनसान,
उधर प्रस्थान किया था ।।
सैनिक आये उन्हें,
न कोई मिला वहाँ था ।
पड़ी न उनकी दृष्टि,
कठौता पड़ा जहाँ था ।।
अग्रोहा से चली,
कुमुक था मिला इशारा ।
रिपु-दल रातों रात,
अतः उज्जैन सिधारा ।।

थी शिशु को ले गई,
पुत्रवत् उसे सम्हाला ।
जागृत हुआ ममत्व,
उसी ने उसको पाला ।।
पढ़-लिख कर सज्ञान-
हुआ; दिन वह भी आया ।
अग्र - वंश की रीति-
नीति से ब्याह रचाया ।।
पुरुष - वर्ग मिट गया,
जहाँ सारे का सारा ।
क्या कम है जो नाम,
बना रह गया हमारा ।।
उसी समय से गौड़,
पुरोहित हुए हमारे ।
करवाते हैं कृत्य,
शुभाशुभ वे ही सारे ।।
उनको एक सदस्य,
मानते हैं हम घर का ।
नहीं समझते स्वयं,
स्वतः को वे बाहर का ।।
पनपा एरण गोत्र,
मात्र इस शिशु के द्वारा ।
है संख्या में अल्प,
अतः यह गोत्र हमारा ।।

नारनौल में नहीं,
अधिक दिन थे रह पाये ।
थे उद्योगी दक्ष,
अन्य देशों को धाये ।।
कुछ शाखाएँ चलीं,
हुईं वे सागर - वासी ।
बढ़ा वहाँ व्यापार,
न रंचक रही उदासी ।।
क्षेत्र अधिकृत किया,
गाँव था सुखद बसाया ।
एरण गोत्री बसे,
ग्राम एरण कहलाया ।।
बीना सरिता मध्य,
बनाया मंदिर अनुपम ।
शिल्पकला थी श्रेष्ठ,
बन गया था सुन्दरतम ।।
अब यह एरण धाम,
तीर्थ था एक कहाया ।
जो भी आया वहाँ,
शांति - सुख उसने पाया ।।

एरण-तीर्थ = सागर जिले में मंडी बामोरा स्टेशन से लगभग ६ मील की दूरी पर हैं। महाभारत कालीन विराट नगर यहीं था।

ऐरन का विष्णु, बाराह मंदिर एवं उसकी प्रतिमाएँ

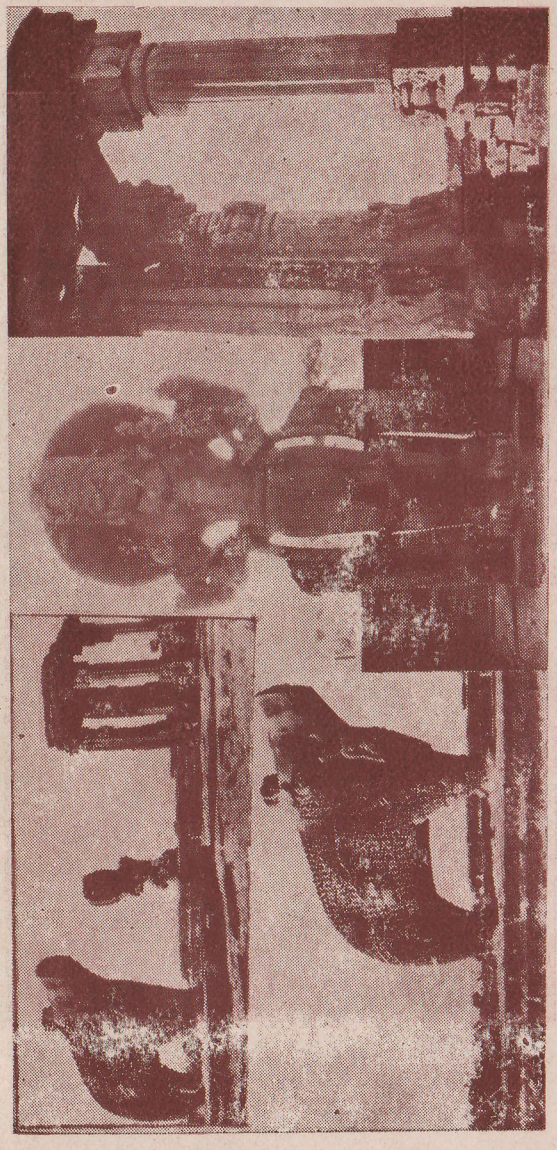

ऐरन का ध्वस्त किला एवं विजय स्तम्भ

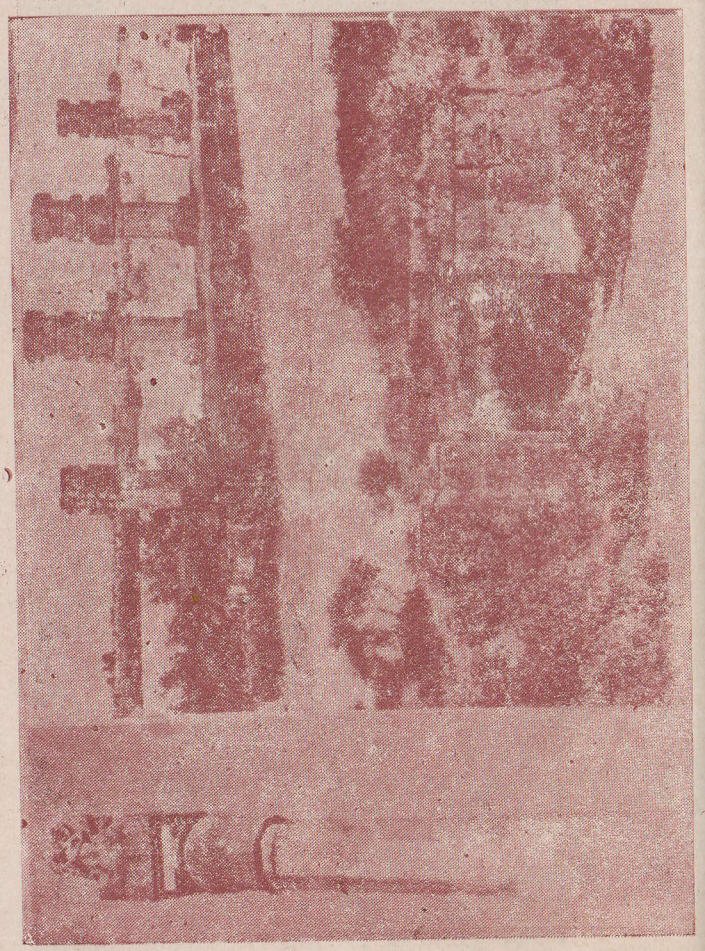

था सड़कों से जोड़-
दिया कर दिया सुभीता ।
रह पाता था नहीं,
यात्रियों से वह रीता ।।
सुनते हैं श्रद्धालु,
वहाँ पर जो जाते थे ।
मन - वांछित; बाराह-
विष्णु से वे पाते थे ।।
सुन्दर एरण धाम,
क्षेत्र का ही प्रभाव था ।
हुई प्रकृति विपरीत,
बना फिर भी लगाव था ।।
अतिवर्षण के साथ,
अवर्षण का दुख झेला ।
तूफ़ानों का झेल-
गये भीषणतम रेला ।।
था संचित धन-धान्य,
रही विधि की दातारी ।
मिल जुल कर सब झेल-
रहे थे विपदा भारी ।।

एरण-धाम का प्रधान मंदिर बीना नदी के बीच में बना हुआ है । विष्णु बाराह की प्रतिमा तथा अन्य भग्नावशेष यहाँ मिलते हैं।

उजड़ न पाये गाँव,
अथक उद्योग किया था ।
जो आवश्यक जिसे,
उसे भरपूर दिया था ।।
किन्तु भाग्य का खेल,
यहीं हर मानव हारा ।
निष्फल होने लगा,
परिश्रम सभी हमारा ।।
यत्र तत्र से बढ़े,
लुटेरे थे चढ़ धाये ।
त्याग चुके थे शस्त्र,
अतः हम जूझ न पाये ।।
नहीं एक दो बार,
अनेकों बार लुट गये ।
करने को विध्वंस,
अमानव तत्व जुट गये ।।
अतः क्षेत्र रह गया,
न रहने योग्य हमारे ।
निकल पड़े सब लोग,
यहाँ से थे मन मारे ।।
कुछ पूरब को गये,
और कुछ पश्चिम धाये ।
कुछ उत्तर की ओर,
और कुछ दक्षिण आये ।।

गये वहाँ वे जहाँ,
जिसे मिल सका सुभीता ।
रहे न कोई कहीं,
निठल्ला बैठा रीता ।।
लौट गये कुछ नार-
नौल भालोट ग्राम में ।
जहाँ - जहाँ जो गये,
जुटे सब स्वरुचि काम में ।।
इस प्रकार हो गये,
पुनः हम थे निर्वासित ।
यत्र तत्र जा बसे,
हुए औरों के आश्रित ।।

चिन्ताएँ कुछ कम न थीं, जिन्हें गये हम झेल ।
किन्तु लगे हैं समझने, बस अब इसको खेल ।।
बस अब इसको खेल, मानते हैं जीवन का ।
इसके द्वारा हमें, मिला है मार्ग सृजन का ।।
लें साहस से काम, कर्म - पथ को अपनाएँ ।
श्रम साधक से दूर, भागती हैं चिन्ताएँ ।।

[९]

बीत गया अतिकाल,
अनेकों शासक आए ।
'अग्रचंद्र' सा किन्तु,
न अनुशासन रख पाये ॥
पनपा ईर्ष्या - द्वेष,
परस्पर ऐक्य न ठहरा ।
मंत्री 'गोकुलचन्द',
दाँव दे बैठा गहरा ॥
ग़ोरी से जा मिला,
चढ़ा कर उसको लाया ।
अपने हाथों स्वतः,
शस्त्र आगार जलाया ॥
वैसे राजा धीर-
पाल कुछ वीर न कम था ।
अग्रोहा में किन्तु,
न वह अनुशासन क्रम था ॥

सैन्य शक्ति भी नहीं,
रह गई थी अब वैसी ।
अग्रचन्द्र के समय,
रहा करती थी जैसी ॥
युद्ध हुआ घनघोर,
कट गये योद्धा सारे ।
युवक सभी के सभी,
गये गिन गिनकर मारे ॥
अग्रोहा ने आज,
पराजय पहली झेली ।
ललनाओं ने स्वतः,
राह जौहर की ले ली ॥
शील बचाया और,
बढ़ाया कुल गौरव को ।
दिया एक सन्देश,
उन्होंने सारे भव को ॥
रख सतीत्व की लाज,
जला दे इस काया को ।
मर्यादा को पाल,
त्याग ममता माया को ॥
लेकर यह सन्देश,
बात आगे थी फैली ।
किसी सती की नहीं-
हुई फिर चादर मैली ॥

'रानी सती' विशिष्ट,
करेंगे आगे चर्चा ।
है जिसकी हो रही,
आज तक पूजा - अर्चा ॥
अग्रोहा से भगे,
लोग; कम हुआ न डर था ।
था जो स्वर्णिम देश,
हो चुका अब खंडहर था ॥
कुलंगार था एक,
जलाया था घर जिसने ।
करनी का तत्काल,
पा लिया था फल उसने ॥
पुरस्कार के हेतु,
पास 'ग़ोरी' के आया ।
वहीं सिपहसालार,
गया तत्काल बुलाया ॥
वह बोला, "रे दुष्ट,
तुझे तो मर जाना था ।
दुनिया में अब नहीं,
कहीं मुख दिखलाना था ॥
तूने किया गुनाह,
वतन से की गद्दारी ।
है इसकी यह सजा,
मौत की कर तैयारी ॥

देश - द्रोह - अभियोग,
लगा है तेरे ऊपर ।
किस मुँह से तू चाह-
रहा रहना इस भू पर ॥
इतना कहकर काट-
लिया सत्वर सर उसका ।
उचित न था रह गया,
जगत में जीना जिसका ॥
'अग्रोदय' में घुसा-
वहाँ 'ग़ोरी' ने देखा ।
दिखी न उसको कहीं,
लेश भी जीवन रेखा ॥
जैसे मानव मात्र,
न रहते वहाँ कभी थे ।
श्री समृद्धि के चिन्ह,
मिटाये स्वतः सभी थे ॥
खेत खड़े के खड़े,
हाथ से स्वतः जलाये ।
शत्रु कि जिससे भूख,
वहाँ पर मिटा न पाये ॥
था ग़ोरी' अति क्षुब्ध,
यहाँ से लौट पड़ा था ।
किस पर शासन करे,
प्रश्न यह गले अड़ा था ॥

छः सौ एकड़ भूमि,
जहाँ अवशेष पड़े हैं ।
स्वर्णाभूषण, रजत,
नगर के चिन्ह गड़े हैं ॥
खेड़े ऊपर एक,
बना जो सुदृढ़ किला है ।
कुछ लोगों को वहाँ,
स्वर्ण बहुमूल्य मिला है ॥
इसकी काया पलट,
हो रही है अब ऐसी ।
हो जावे अति शीघ्र,
मान्यता तीरथ - जैसी ॥

आये जाये जगत में, आँधी या तूफ़ान ।
हानि लाभ का डर नहीं, रहे सुदृढ़ ईमान ॥
रहे सुदृढ़ ईमान, मनोबल रहे साथ में ।
आ जाता है पुनः वही वर्चस्व हाथ में ॥
राज्य गया तो गया, न हम रंचक पछताये ।
धर्म, कर्म, उद्योग, वही श्री फिर ले आये ॥

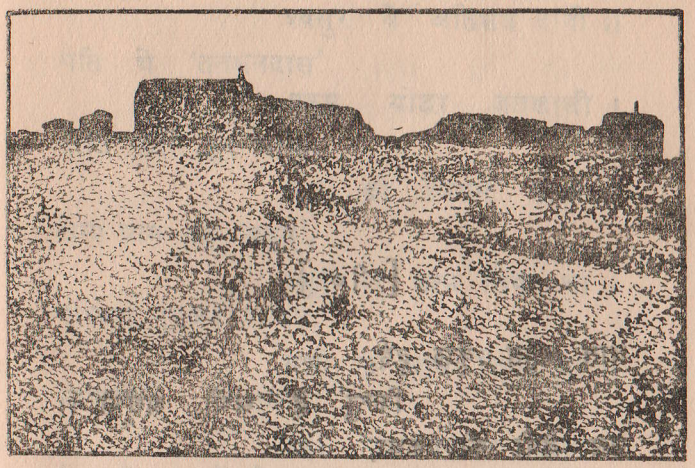

खेड़े ऊपर एक,
बना जो सुदृढ़ किला है ।
कुछ लोगों को वहाँ,
स्वर्ण बहुमूल्य मिला है ॥

[१०]

बात बहुत कुछ हुई,
किन्तु है अभी अधूरी ।
उस देवी की कथा,
न जब तक कह दें पूरी ॥
अग्रवाल कुल कीर्ति,
बढ़ी है जिसके द्वारा ।
जगदम्बा सम पूज,
रहा जिसको जग सारा ॥
कोख हुई वह धन्य,
सुता ऐसी जो जाई ।
धन्य अग्र - कुल हुआ,
कि ऐसी देवी पाई ॥

धन्य धन्य दो वंश,
पिता 'गुरसामल' ज्ञानी ।
और कि 'जालीराम',
श्वसुर थे अतिशय दानी ॥
पति थे 'तनधनदास'
परम योद्धा बलशाली ।
रीति नीति हर भाँति,
वंश की जिसने पाली ॥
धन्य ग्राम वह 'महम्',
जहाँ पर जन्म लिया था ।
परिजन पुरजन स्वजन,
सभी को धन्य किया था ॥
नारायणी सुनाम,
यहीं पर बचपन बीता ।
फिर हिसार में मिला,
उसे अपना मन - चीता ॥
जोड़ी अनुपम बनी,
'रोहिणी' सँग 'चंद्रा' सी ।
अथवा 'शालिग्राम',
और 'तुलसी' 'वृन्दा' सी ॥
श्रीयुत जालीराम,
प्रतिष्ठित थे समाज के ।
वाक् चतुर थे चुस्त,
अनुभवी राज - काज के ॥

महम् = हिसार के पास एक गाँव ।

थे नवाब के मित्र,
मान करता था उनका ।
देखा सुना प्रभाव,
नगर के ऊपर जिनका ॥
दीवानी दी सौंप,
कर लिया राजी उनको ।
इस पद के अनुकूल,
योग्य पाया था जिनको ॥
अन्तराल के बाद,
हो गई खटपट उससे ।
इतने दिन तक रही,
मित्रता गाढ़ी जिससे ॥
स्वाभिमान को ठेस-
लगी कर सहन न पाये ।
त्यागन किया हिसार,
चले 'झुँझनूपुर' आये ॥
थे जब 'जालीराम',
हो गये झुँझनू वासी ।
गुरसामल के सदन,
बहुत दिन रही उदासी ॥
बीते कतिपय वर्ष,
समय था द्विरागमन का ।
पहुँचे 'तनधनदास',
काम था सबके मन का ॥

पुलकित परिजन सभी,
प्रफुल्लित नगर निवासी ।
'महम' ग्राम में उतर-
पड़ी ज्यों पूरनमासी ॥
किन्तु राहु था एक,
यवन शासक हिसार का ।
खिले कमल दल हेतु,
विकट झोंका तुषार का ॥
थी जो खटपट हुई,
उसे वह भूल न पाया ।
त्याग मित्रता; पंथ-
शत्रुता का अपनाया ॥
लौटे 'तनधनदास',
स्वगृह को जब हर्षित मन ।
रुके मार्ग में; जहाँ,
दिखा उनको प्रिय उपवन ॥
सैनिक किये नियुक्त,
चतुर्दिक वीर गठीले ।
प्रहरी विनयी, सजग,
युद्ध - वारिधि गर्वीले ॥
यहीं गाज सी गिरी.
यवन ने धावा बोला ।
ले जाने के लिए,
सती का पावन डोला ॥

युद्ध हुआ घनघोर,
शत्रु की धरती खसकी ।
मिली यहाँ पर उसे,
तीक्ष्ण प्याली कटु रस की ।।
कुटिल नीति पर चला,
संधि का हाथ बढ़ाया ।
मैत्री का विश्वास,
यवन ने पुनः दिलाया ।।
बैरी का विश्वास,
कर गये भूल यही थी ।
सरल हृदय की राज-
नीति यह नहीं सही थी ।।
खेमे में ले गया,
वहाँ धोखे से मारा ।
लिये इरादा क्षुद्र,
वधू की ओर सिधारा ।।
रण चण्डी का रूप,
लिया उसने था तत्क्षण ।
ले कर में करवाल,
कर चली रिपु दल भक्षण ।।
ऐसी मारी मार,
गली थी मिली न भागे ।
जो सम्मुख पड़ गये,
मरे बेमौत अभागे ।।

न था जानता यवन,
बर्फ में हैं अंगारे ।
आध घड़ी में पस्त,
हुए मन्सूबे सारे ।।
हुआ साफ मैदान,
वहीं पर चिता रचाई ।
लिया गोद पति शीस,
साथ परलोक सिधाई ।।
'राणा काका' साथ,
कि जो पीहर से आये ।
राख समेटी और,
उसे झुंझनू ले धाये ।।
था झुंझनू कुछ दूर,
न घोड़ा डग भर पाया ।
स्वामि भक्त वह अश्व,
दुखित परलोक सिधाया ।।
घटती घटना एक,
प्राण जो हर लेती है ।
घटकर घटना वही,
बहुत कुछ दे देती है ।।
स्वागत के हित नवल-
वधू के सजे थाल थे ।
परिजन माता पिता,
मुदित मन थे निहाल थे ।।

बन्दनवारे बँधे,
चौक पुर गया द्वार पर ।
सदन सजाया गया,
बुलावा फेरा घर घर ॥
थी शहनाई इधर,
उधर से समाचार था ।
उमड़ पड़ा तत्काल,
दुःख सागर अपार था ॥
होकर जालीराम,
असुध बस वहीं गिरे थे ।
हँसी खुशी के मध्य,
जहाँ पर अभी घिरे थे ॥
थी माता बेहाल,
हाल मत पूछो उसका ।
था इकलौता पुत्र,
छिन गया असमय जिसका ॥
सारा साज सिंगार,
चला इस घड़ी वहाँ था ।
जिस थल उतरी राख,
अश्व रुक गया जहाँ था ॥
खोये खोये उमड़-
पड़े थे झुंझनू वासी ।
वयोवृद्ध आबाल,
भीड़ थी अच्छी खासी ॥

स्वागत के हित साज,
वहाँ जो गये सजाये ।
अश्रु धार के बीच,
उठा कर सब ले आये ॥
पूज्य भाव से यहाँ,
सभी कर दिया समर्पित ।
रूप बदल कर हुआ,
उसी को उसका अर्पित ॥
सत्ती चौरा, बना,
हो चली पूजा - अर्चा ।
अब थी रानी सती,
बनी घर घर की चर्चा ॥
जगदम्बा का रूप,
मानते हैं सब उसको ।
पर नर की छू सकी-
नहीं थी छाया जिसको ॥
वहाँ एक हर साल,
बड़ा मेला भरता है ।
देवी उसको मान,
जगत पूजा करता है ॥

रानी सती का मेला भादों मास में कृष्ण पक्ष की अमावस्या को भरता है ।

हैं चर्चाएँ सुनी,
वहाँ पर जो जाता है ।
मुंह माँगा वरदान,
सुनिश्चित वह पाता है ॥
इस घटना ने दिया,
एक सन्देश सही है ।
धीरज, साहस, शक्ति-
वान हो पूज्य वही है ॥
परम पिता देवत्व,
सदा उसको देता है ।
शौर्य शक्ति से काम,
समय पर जो लेता है ॥

चर्चा थी अब चल पड़ी, हुआ एक अवतार ।
जिसके कारण धन्य है, अग्रवाल परिवार ॥
अग्रवाल परिवार, सद्गुणों का है पोषक ।
प्राणि मात्र का सदा, रहा रक्षक परितोषक ॥
साधु, संत, विद्वान, कर्म की पूजा - अर्चा ।
अग्रवंश की आज, यही है घर - घर चर्चा ॥

जनपद, गोत्र, पुत्र तथा कन्याओं के नाम

आप जनपदों, गोत्रों, पुत्रों तथा कन्याओं के नाम पद्यात्मक रूप में पढ़ चुके हैं । उन्हें स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ पुनः उद्धृत कर रहे हैं ।

१८ जनपद	१८ गोत्र	१८ ज्येष्ठ सुत	१८ पुत्रियाँ
१–अग्रोहा	गर्ग	विभु	कांती
२–नांगल	नांगल	नारसेन	शांती
३–नारोनवल	एरण	वासुदेव	दया
४–जींद	जिन्दल	जैत्रसध	तितिक्षा
५–गढ़वाल	गोयल	गेंदूमल	अधरा
६–मेरठ	मंगल	मणिपाल	रमा
७–गुड़गाँव	गवन	गोधर	यामिनी
८–काँगड़ा	ढावण	ढावणदेव	शिवा
९–पानीपत	तायल	ताराचन्द	अर्जिका
१०–कर्नाल	कच्छल	करणचन्द	अमला
११–लुहारू	विन्दल	वृन्ददेव	पुण्या
१२–हाँसी	सिंहल	सिन्धुपति	रामा
१३–मंडी	मित्तल	मंत्रपति	मही
१४–रोहतक	कांसल	कुण्डल	अमृता
१५–इन्द्रप्रस्थ	वात्सिल	ऐंद्रमणि	कला
१६–आगरा	मुद्गल	माधवसेन	शुभा
१७–बिलासपुर	बंसल	वीरभानु	जलदा
१८–अग्रपुर	तुंगल	तम्बोलकर्ण	शिखा

नारीनवल=नारनौल । काँगड़ा=कोट काँगड़ा ।

१८ ज्येष्ठ पुत्रों के अतिरिक्त शेष ३६ नाम इस प्रकार हैं-

१. बली	२. विरोचन	३. दवन
४. विरण	५. मालो	६. विकास
७. केशव	८. पावक	९. अनिल
१०. वपुन	११. वाणी	१२. विशाल
१३. धन्वी	१४. धामा	१५. सुन्द
१६. पलश	१७. मन्दोकन	१८. धर
१९. कुश	२०. विनोद	२१. नन्द
२२. पयोनिधि	२३. प्रखर	२४. दाड़िमदंती
२५. कुन्द	२६. कुकुंबक	२७. शांति
२८. रव	२९. शुभ	३०. मल्लीनाथ
३१. विलासद	३२. कान्ति	३३. पामा
३४. क्षमाशाली	३५. हर	३६. कुमार

स्थान, काल, भाषा एवं उच्चारण भेद के कारण गोत्रों के नामों में यत्र-तत्र मतभेद हैं; अतः अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार उन्हें सुधार लें।

जैसे—गवन=गोयन(गोयल)। तुंगल=तिंगल। ढावण=धारण। मुद्गल=मधुकुल। वात्सिल=भंदल। कच्छल=कुच्छल आदि।

❀❀❀❀

पूर्वज एक: समाज एक है

मिल कर हम सब करें,
दूर जन मानस भ्रम को।
समझा कर के आज,
दसा, बीसा के क्रम को॥
बीसा हो या दसा,
न इनमें भेद कहीं है।
अग्र-वंश की भूमि,
सभी की उपज वहीं है॥
हरिश्चन्द्र का यहाँ,
सुशासन आया जब था।
नियम उस समय एक,
बना जन-हित में तब था॥
सेनाओं का भार,
वैश्य कुल पर था आता।
जिसमें जो सामर्थ,
भार उस भाँति उठाता॥
सेना अक्षौहिणी,
बीस था जो ले पाया।
मात्र उसी का वंश,
आज बीसा कहलाया॥

दस से अधिक न भार,
उठाना भाया जिनको ।
अतः दसा का दिया-
गया संबोधन उनको ।।
इनमें छोटा बड़ा,
भला हम कह दें किसको ।
समय समय की बात,
किया जो भाया जिसको ।।
धर्म - कर्म सब एक,
एक बस अग्र वही है ।
सब हैं उसकी देन.
बात यह अमिट सही है ।।
खान - पान है एक,
एक हैं पूर्वज अपने ।
देख रहे हैं सभी,
एकता के जब सपने ।।
तो फिर अन्य विचार,
न हम सब मन में लावें ।
भेद - भाव दें मिटा,
एक हम सभी कहावें ।।

———

नेमा-बंधु पत्रिका से साभार । श्री शालिगराम नेमा संपादक शताब्दी चर्चा एवं सह-संपादक नवीन दुनिया के सौजन्य से ।

सुनो एक सन्देश

अग्रोहा वह जिसे,
पूर्वजों से है पाया ।
जब से खण्डहर हुआ,
नहीं जा सका संजाया ।।
जाग उठे कुछ लोग,
जुटे हैं तन मन धन से ।
इसका पुनरुद्धार,
कर रहे बड़ी लगन से ।।
मंदिर कई विशाल,
बन रहे आज वहाँ हैं ।
पुरखों के बहुमूल्य,
चिन्ह कुछ पड़े जहाँ हैं ।।

है कल्पना विशेष,
सुनी है उनके मन को ।
बड़े बड़ों का योग,
कमी है कहीं न धन को ॥
अतः बना दें तीर्थ,
अग्रवालों का उसको ।
धन्य कहेंगे उसे,
बात सूझी है जिसको ॥
है उनका सन्देश,
कहो जाकर के सब से ।
हम अग्रोहा धाम,
कहेंगे उसको अब से ॥

सच्ची संतति बनेंगे, अग्रसेन की आप ।
परम अहिंसा धर्म हो, दान - पुण्य है माप ॥
दान - पुण्य है माप, ध्यान पर-हित पर लावें ।
परम्परा, हर रीति, नीति उनकी अपनावें ॥
सत्य वचन हो सदा, बात हो कभी न कच्ची ।
तभी आप संतान, अग्र की होंगे सच्ची ॥

❀❀
❀❀

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री महालक्ष्मी दैव्यै नमः ॥

॥ श्री लक्ष्मी पूजन लघु विधि ॥

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड, भाण्डोदरी दीप्तिमयी चिन्मयातीता, ब्रह्म शक्ति पराम्बा श्री महालक्ष्मी जी समस्त प्राणियों की परिपालिका, निष्णात-पोषिका एवं पुत्रवत्सला जगदम्बा, जो कल्याणकर्त्री, चिर संगिनी विश्व संचालिका हैं। श्री लक्ष्मी देवी जो उदित हुए सूर्य कांति के सदृश सौंदर्यमयी जगज्जननी हैं; श्री लक्ष्मी जी जो समस्त विश्व एवं समुदाय में ऐश्वर्य, सौन्दर्य, सरसता और जीवन तत्व प्रदान करने वाली हैं; उनकी आराधना अग्रोहा के महाराजा अग्रसेन ने करके सुखसमृद्धि प्राप्त की एवं सम्पूर्ण समाज को नई दिशा प्रदान की।

महालक्ष्मी जी के व्रत का आरंभ अगहन मास की प्रतिपदा से प्रारंभ होता है तथा पूर्णिमा के दिन समापन होता है। हाथीयुक्त श्री लक्ष्मी जी तथा श्रीयंत्र की विधिवत स्थापना करके व्रत के नियम का पालन करते हुए व्रती को जितेन्द्रिय होना चाहिये।

सर्वप्रथम व्रती को चाहिये कि वह पूर्वाभिमुख बैठकर श्रीगणेश लक्ष्मी तथा श्रीयंत्र को अष्टदल वाले कमल (चौक) जो कि अष्टगंध से बना हो, पटे पर सुन्दर आसन बिछाकर विधिवत स्थापना करे। अष्टदल वाले कमल के पूर्व की ओर शक्तियुक्त इन्द्र की स्थापना करे। कमल कर्णिका के मध्य में श्वेताङ्गी, श्वेतासन विभूषिता, प्रसन्न-वदना, कमलधरा, शरदचंद्रवत, कांतियुक्ता, चतुर्भुजा, अभय वरदहस्ता तथा दोनों पार्श्वों से हस्ति शुण्डों से स्वर्ण कलशों के जल से सींची जाती हुई अदल छत्र युक्ता श्री महालक्ष्मी देवी की स्थापना करे। फिर आचमन करके संकल्प ले और यह कहे कि हे देवी आज से मैं एक माह का व्रत रखूंगा। फिर कलश, श्री गणेश, गौरी, पृथ्वी, नवग्रह,

षोडशमातृका आदि का पूजन करे तथा श्री महालक्ष्मी देवी के आवाहन के लिये इस मंत्र का उच्चारण करे—

॥ महालक्ष्मी समागच्छ पद्मनाभ पदादिह ॥

श्री महालक्ष्मी जी का स्वरूप स्वर्ण के समान पीत वर्ण वाली किंचित हरित वर्ण वाली तथा हरिणी रूपधारिणी सुवर्ण मिश्रित रजत की माला धारण करने वाली चाँदी के समान धवल पुष्पों की माला धारण करने वाली चंद्रमा के सदृश्य प्रकाशमान तथा चंद्रमा की तरह संसार को प्रसन्न करने वाली या चंचला हिरण्य के समान रूपवाली, हिरण्यमय ही जिसका शरीर है चतुर्भुजी–शंख, चक्र, गदा पद्म, कमल, हाथी पर सवार श्री महालक्ष्मी जी मुझ पर प्रसन्न हों ऐसा निवेदन बारंबार कर उनका ध्यान कर अक्षत फूल माँ भगवती लक्ष्मी के सामने अर्पित करे तथा उनकी आराधना करे।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजत स्रजाम ।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जात वेदोमऽआवह ॥
नमस्तेस्तु महामाये श्री पीठेश्वर पूजते ।
शंख चक्र गदाहस्ते महालक्ष्मी नमोस्तुते ॥

श्रीसूक्त से श्री महालक्ष्मी देवी का षोडशोपचार पूजन करे। (१) आवाहन (२) आसन (३) पाद्य (४) अर्घ्य (५) आचमन (६) स्नान (७) वस्त्र (८) उपवस्त्र (९) गंध (१०) सौभाग्यद्रव्य (११) पुष्प (१२) धूप (१३) दीप (१४) नैवेद्य (१५) दक्षिणा आरती, परिक्रमा पुष्पाञ्जलि इसके पश्चात् (१६) नमस्कार करे। प्रसाद लेवें।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रिया दिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

इस श्लोक को कहकर ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः तीन बार कहे। इसके बाद जिस स्थान पर बैठकर पूजन की है, उस आसनी के नीचे तीन आचमनी जल छोड़े तथा उसी

जल को अपने माथे पर लगावे। व्रत का पालन करे, इस तरह एक माह तक करे तथा पूर्णिमा के दिन विधिवत पूजन उद्यापन ब्राह्मण से करावे तथा यथाशक्ति ब्राह्मणों, कन्याओं, याचकों को भोजन करावे तथा यथा शक्ति दान-दक्षिणा दे। विधिवत उद्यापन करने से ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति होती है, ऐसी ही उपासना महाराजा अग्रसेन ने करके ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा समाज के अग्रणी हुए।

[नोट—यदि हो सके तो श्री लक्ष्मी देवी के पूजन के समय कमल गटे की माला या लाल चंदन की माला अथवा रुद्राक्ष की माला से कम से कम एक माला जप अवश्य करे।

॥ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद
श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः ॥

इस मंत्र का जप जो भी व्यक्ति श्रद्धा विश्वास के साथ करता है, उसके ऊपर माँ भगवती श्री लक्ष्मी देवी जी की अवश्य कृपा होती है, उसके जीवन में धनधान्य ऐश्वर्य की किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहती।

वर्णाश्रमानुसारी वैदिक सनातन धर्मशास्त्र सम्मत स्वधर्मानुष्ठान ही सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान माँ भगवती एवं भगवान राम की महती सपर्या है। संस्कार मलापनयन और गुणाधान द्वारा वस्तु को चमत्कृत करते हैं जैसे हीरक आदि रत्न निघर्षणादि संस्कारों द्वारा चमत्कृत होते हैं, वैसे ही हमारे बाबूजी "श्री मनोज जी" हमारे नगर के ही नहीं, प्रदेश तथा देश के देदीप्यमान रत्न हैं। आपकी भाषा, शैली, माधुर्य, सरसता, सरलता देखते ही बनती है।

प्रस्तुत काव्य "अग्र-कुल-कलश" इसी शृंखला की एक और मधुर कड़ी है। साहित्य कला धर्म विज्ञान एक ही आदि शक्ति के उपासक हैं, पूरक हैं। इस कारण वही शक्ति शिवा, सरस्वती और महालक्ष्मी के रूप में आज भी प्रतिष्ठित हैं और रहेंगी। क्योंकि वही जगत का कारण और शाश्वत् सत्य है। श्री "मनोज" जी श्रीयंत्र के निष्ठा-

वान उपासक हैं, उन्होंने अपने काव्य में उसके महत्व को प्रतिपादित करते हुये लिखा भी है—

निष्ठा से श्रीयंत्र, जहाँ पूजा जाता है ।
वहाँ प्रबलतम शत्रु, नहीं कुछ कर पाता है ।।

महाराज अग्रसेन जी को उनके कुल गुरु ने श्रीयंत्र देते समय कहा भी है—

लो यह लक्ष्मीयंत्र कहा श्रीयंत्र इसे है ।
हुआ सर्वसम्पन्न प्राप्त हो गया जिसे है ।।

गाम्भीर्य एवं प्रवाह पूर्ण भाषा में रचित यह लघुकाव्य इतना मनोरम है कि पढ़ने में तल्लीनता आ जाती है। काव्य की शैली सरस एवं सहज ही ग्राह्य है ।

यदि साहित्य के विद्वान लोग शास्त्रीय तथा सामाजिक विषयों का ऐसा ही सृजन करें, तो लोकोपकार, सामाजिक उद्धार के साथ यश भी प्राप्त होगा ।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस काव्य ने अग्रवाल समाज की एक बहुत बड़ी कमी को पूर्ण किया है ।

अंत में मैं अपने पितृतुल्य "बाबू जी" की दीर्घायु की कामना करता हूँ एवं उन्हें साधुवाद देने का अधिकारी तो नहीं हूँ, फिर भी उन्हें मुक्त हृदय से साधुवाद देता हूँ कि वे ऐसे ही श्रेष्ठ ग्रंथों का सृजन सदैव करते रहें तथा साहित्य की सेवा निस्वार्थ भावना से करते रहें एवम् माता श्री महालक्ष्मी जी की कृपा सदैव उन पर बरसती रहे ।

पं. रविकान्त दीक्षित शास्त्री

पं. रविकान्त मथुराप्रसाद दीक्षित शास्त्री
ज्योतिष कर्मकाण्ड भूषण आयुर्वेदरत्न
पौरोहित्य रत्न, एम.ए.एल.एल.बी.
दरहाई चौक, जबलपुर

श्री लक्ष्मी–पूजन सामग्री

पान, सुपाड़ी, फूलमाला, इत्र, लोंग, इलायची, जायपत्री, काली-मिर्च, रोली, मौली (कलावा), धूप, कपूर, अगरबत्ती, केसर, चंदन, चाँवल, यज्ञोपवीत ५ (जनेऊ) रुई, अबीर (गुलाल), अभ्रक (बुक्का), कपड़ा लाल, कपड़ा सफेद, पेड़ा, पंचामृत (दूध, दही, घी, शक्कर, शहद), श्री गणेश लक्ष्मी जी की प्रतिमा, वस्त्र, नारियल का गोला, यथा संभव सवर्षौधि, पंचपल्लव, गंगाजल, सिंदूर, ताम्र कलश, ऋतु फल, वर्ण वस्त्र, लाई, दूर्वा, हल्दी की गांठ, हल्दी पिसी, नारियल साबूत, दिया, अष्टगंध ।

श्रीयंत्र का गार्हस्थ्य उपयोग

इस यंत्र को ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवाकर निवास गृह तथा व्यापारिक प्रतिष्ठान में पुष्य नक्षत्र में प्रतिष्ठित करने से धन वैभव की प्राप्ति होती है साथ ही सुख-शांति का अनुवभ भी होता है ।

स्नानादि से निवृत्त होकर केवल श्रद्धा सहित एक बार नमन् यथेष्ठ है । यदि सरलता से प्राप्त हो सके तो एक लाल फूल चढ़ा देना चाहिये ।

—रघुनाथ प्रसाद गिदरोनिया

विशेष– श्री गिदरोनिया जी को अनेक यंत्रों-मंत्रों का यथेष्ठ ज्ञान है । यह उनकी जन-हितैषी निःशुल्क सेवा है, जिसके द्वारा उन्होंने अनेक मित्रों का भला किया है ।

—मनोज

कुलदेवी श्री महालक्ष्मी

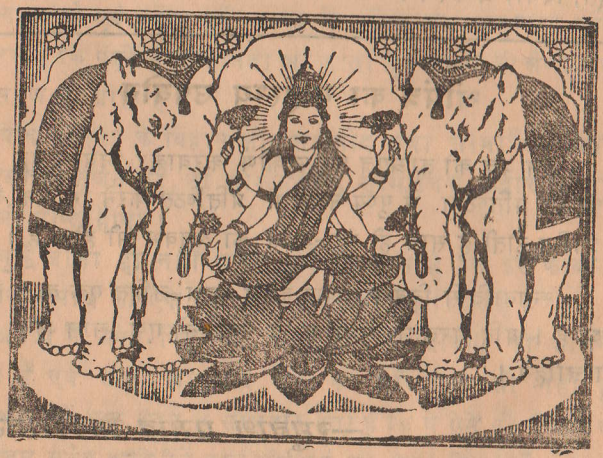

(१) आरती श्री कुलदेवी महालक्ष्मी की

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ।
रिद्धि सिद्धि सुख दात्री तुम हो, तुम जग की त्राता ॥
मैया तुम जग की त्राता ।

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ॥
तुम कुलदेवी पूज्य हमारी, शरण गहूँ किसकी ।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिसकी ॥
मैया आस करूँ जिसकी ।

जो ध्यावे फल पावे, दुख बिसरे मन का ।
सुख सम्पति घर आवै, कष्ट मिटै तन का ॥
मैया कष्ट मिटै तन का ।

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ॥
तुम करुणा की सागर, तुम पालन कर्ता ।
मैं मूरख अज्ञानी, तुम जग दुख हर्ता ॥
मैया तुम जग दुख हर्ता ।

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ॥
सूर्य चन्द्र की रश्मि तुम्हीं हो, तुम हो ब्रह्माणी ।
अग्र वंश पर दया करो मां, जग की कल्याणी ॥
मैया जग की कल्याणी ।

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ॥

ऋषि मुनि नारद तुमको ध्यावैं, ध्यावै जग सारा ।
दया क्षमा की तुम सागर हो, तुम्हीं गंग धारा ॥
मैया तुम्हीं गंग धारा ।

पान सुपारी फूल नारियल और पंच मेवा ॥
चन्दन अक्षत तुम्हें चढ़ायें नित्य करें सेवा ।
मैया नित्य करें सेवा ॥

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ।
अच्छे भले बुरे जैसे हैं, हैं मैया तेरे ॥
धरो शीष पर हाथ दया–निधि कष्ट हरो मेरे ।
मैया कष्ट हरो मेरे ॥

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ।

❀❀

(२) आरती श्री कुलदेवी महालक्ष्मी की

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ।
गुरु जन ऋषि मुनि तुमको ध्यावैं, ध्यावै जग सारा ॥
असुर मर्दिनी देव हर्षिणी, ईति भीति हारा ।
मैया ईति भीति हारा ॥

श्री जगदम्बे श्री जग अम्बे तुम विद्या तारा ।
तुम्हीं नमदा तुम्हीं त्रिवेणी, गंग जमुन धारा ॥
मैया गंग जमुन धारा ।

ॐ जै लक्ष्मी माता, मैया जै लक्ष्मी माता ॥
श्री लक्ष्मी श्री शिवा शारदा, तुम जग की माता ।
तुम जग तारिणी कष्ट निवारिणी रिद्धि सिद्धि दाता ॥
मैया रिद्धि सिद्धि दाता ।

ॐ जै लक्ष्मी माता मैया जै लक्ष्मी माता ॥
तुम जग सृष्टा अन्तर्दृष्टा तुम अग जग कर्ता ।
विंध्यवासिनी परमहंसिनी तुम भव भय हर्ता ॥
मैया तुम भव भय हर्ता ।

जो पूजें श्रीयंत्र तुम्हारा निश्चित फल पावैं ॥
भुवन भारती करें आरती त्रिपुरारी ध्यावैं ।
मैया त्रिपुरारी ध्यावैं ॥

द्वार तिहारे देव पितर गण परम शांति पावैं ।
करैं आरती इन्द्र तुम्हारी गणपति गुन गावैं ।।
मैया गणपति गुन गावैं ।

ॐ जै लक्ष्मी माता मैया जै लक्ष्मी माता ।।
जन सुख दाता शक्ति प्रदाता धन वैभव दात्री ।
ब्रह्मचारिणी हृदयहारिणी परम सुयश पात्री ।।
मैया परम सुयश पात्री ।

ॐ जै लक्ष्मी माता मैया जै लक्ष्मी माता ।।
ब्रह्मा विष्णु महेश उतारैं शुचि आरति माँ को ।
तीन लोक दिग्पाल निहारैं परम सुखद झांकी ।।
मैया परम सुखद झांकी ।

ॐ जै लक्ष्मी माता मैया जै लक्ष्मी माता ।।

---

(१) आरती श्री १००८ महाराजा अग्रसेन की

ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।
हर्षित मन सब करें आरती नित्य करें सेवा ।।
स्वामी नित्य करें सेवा ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।।

अग्र-वंश तुमको नित ध्यावे, ध्यावे जग सारा ।
सूर्य चन्द्र तुम अग्र वंश के, तुम हो ध्रुव तारा ।।
स्वामी तुम हो ध्रुव तारा ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।।

जन्म तुम्हारा हुआ कि जिस दिन, धरा हुई पावन ।
मात पिता के हुए लाड़ले, गुरु जन मन भावन ।।
स्वामी गुरु जन मन भावन ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।।

परम्परागत धर्म तुम्हारा, वीर व्रती ध्यानी ।
विजय इन्द्र पर हुई तुम्हारी, अग जग ने जानी ।।
स्वामी अग जग ने जानी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।।

मिला राज्य फिर हुए तभी, तुम अग्रोहा वासी ।
पड़ी वंश की नींव सुदृढतर, है जो अविनासी ॥
स्वामी है जो अविनासी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

हुए अग्र से अग्रसेन, जब किया छत्र धारण ।
मंत्र अहिंसा फैलाने के, बने तुम्हीं कारण ॥
स्वामी बने तुम्हीं कारण ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

जीव मात्र के हित रक्षण में, रहे सदा आगे ।
तेरे ही उद्योग करण से, धर्म कर्म जागे ॥
स्वामी धर्म कर्म जागे ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

नाग सुता माधवी सयानी, साध्वी पटरानी ।
पूजा जिसकी करे निरंतर, सारी रजधानी ॥
स्वामी सारी रजधानी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

रहे शीश पर हाथ तुम्हारा, पूर्वज अवतारी ।
धर्म कर्म रत रहें निरंतर, अग्रध्वजा धारी ॥
स्वामी अग्रध्वजा धारी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

——

(२) आरती श्री १००८ महाराजा अग्रसेन की

ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ।
जन गन मन सब करें आरती, इन्द्र करें सेवा ॥
स्वामी इन्द्र करें सेवा ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

तुम जन रंजक, तुम दुख भंजक, तुम हो सुखदाता ।
मानवता के परम पुजारी, अग जग के त्राता ॥
स्वामी अग जग के त्राता ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

विप्र हितैषी, जीव सुरक्षक, जन सुख संचारी ।
तुम्हें सश्रद्धा रही देखती, यह दुनिया सारी ॥
स्वामी यह दुनिया सारी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

सत्य अहिंसा प्रेम पंथ की, मिली तुम्हें थाती ।
संहारे तुमने कितने ही, मानवता घाती ॥
स्वामी मानवता घाती ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

नीर क्षीर सा न्याय तुम्हारा, नीति निपुण ज्ञानी ।
रहे तुम्हारे सदा प्रशंसक, साधु संत ध्यानी ॥
स्वामी साधु संत ध्यानी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

तुम्हीं अठारह गोत्र हमारे, तुम्हीं प्रवर उनके ।
पूर्वज अग्रज तुम्हीं हमारे, अग्रवाल जन के ॥
स्वामी अग्रवाल जन के ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

सत्य अहिंसा परम धर्म है, सबका उद्धारी ।
तुमने यही सिखाया सबको, धर्म ध्वजाधारी ॥
स्वामी धर्म ध्वजाधारी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

एक ईंट मुद्रा से हमने, नया पंथ पाया ।
इस समाजवादी रचना से, नव जीवन आया ॥
स्वामी नव जीवन आया ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

रिद्धि सिद्धि वैभव के दाता, सत् संगी दानी ।
आन तुम्हारी इन्द्रपुरी में देवों ने मानी ॥
स्वामी देवों ने मानी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

विद्या, बुद्धि, विवेक हमें दो, रहें सदाचारी ।
प्रीति परस्पर बढ़े निरंतर, हों सुख संचारी ॥
स्वामी हों सुख संचारी ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

कुल देवी लक्ष्मी की हम सब, नित्य करें सेवा ।
नाम तुम्हारा हमें सदा हो, मंजु मधुर मेवा ॥
स्वामी मंजु मधुर मेवा ।
ॐ जै अग्रे देवा, स्वामी जै अग्रे देवा ॥

अग्रसेन–वंशावली

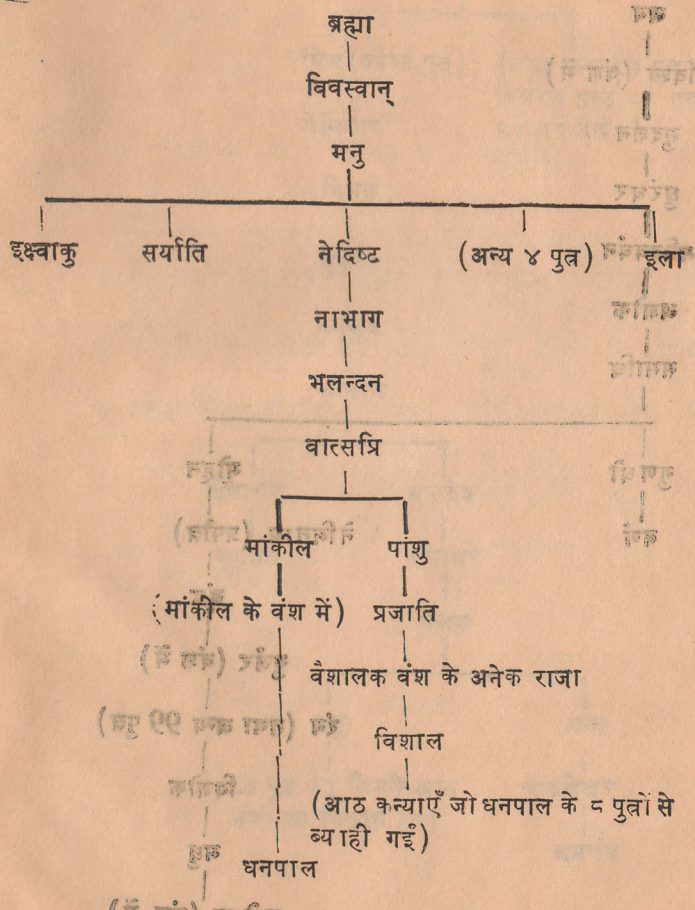

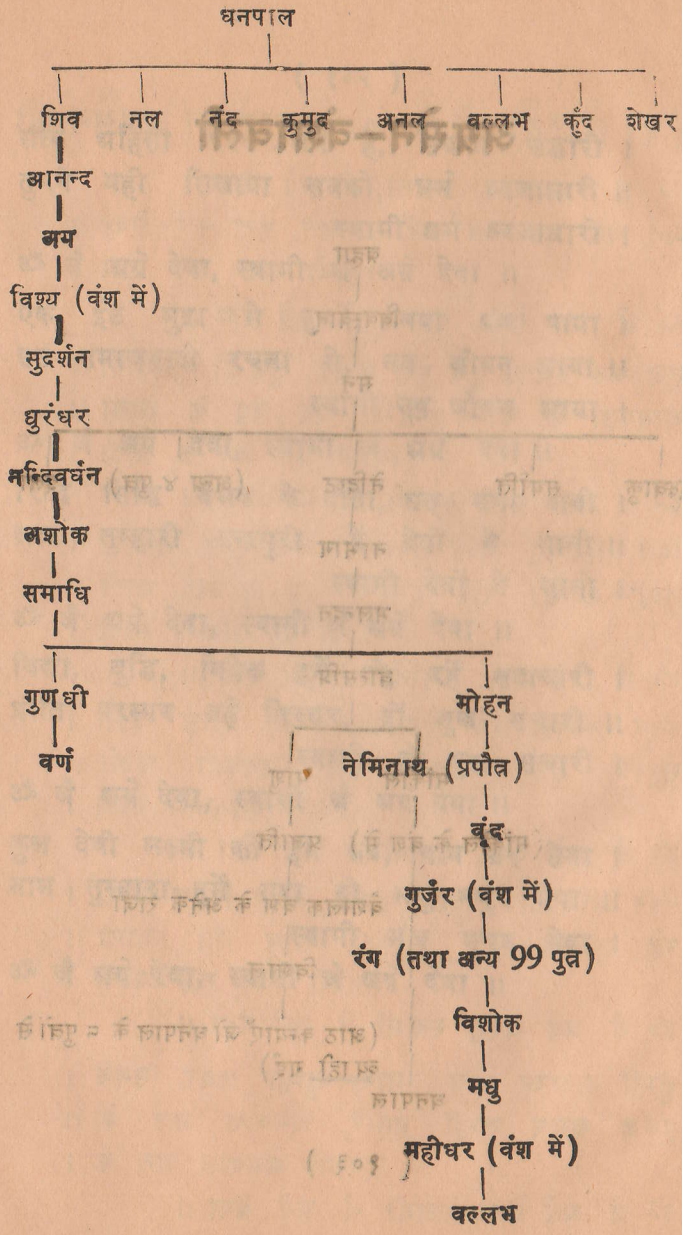
धनपाल
शिव
नल
नंद
कुमुद
अनल
वल्लभ
कुंद
शेखर
आनन्द
अय
विश्य (वंश में)
सुदर्शन
धुरंधर
नन्दिवर्धन
अशोक
समाधि
गुणधी
वर्ण
मोहन
नेमिनाथ (प्रपौत्र)
वृंद
गुर्जर (वंश में)
रंग (तथा अन्य 99 पुत्र)
विशोक
मधु
महीधर (वंश में)
वल्लभ

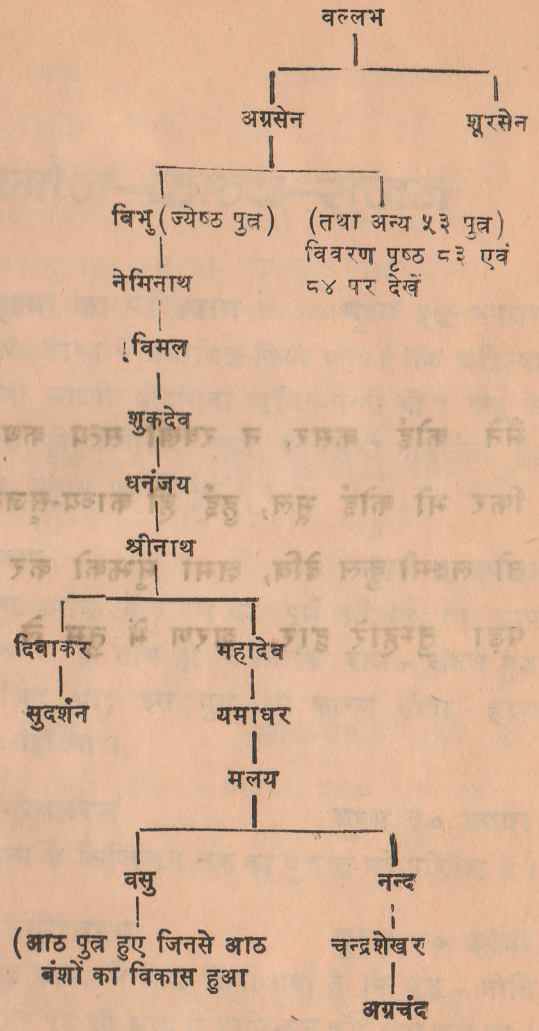
वल्लभ
अग्रसेन
शूरसेन
विभु (ज्येष्ठ पुत्र)
(तथा अन्य ५३ पुत्र)
विवरण पृष्ठ ८३ एवं ८४ पर देखें
नेमिनाथ
विमल
शुकदेव
धनंजय
श्रीनाथ
दिवाकर
महादेव
सुदर्शन
यमाधर
मलय
वसु
नन्द
(आठ पुत्र हुए जिनसे आठ वंशों का विकास हुआ
चन्द्रशेखर
अग्रचंद

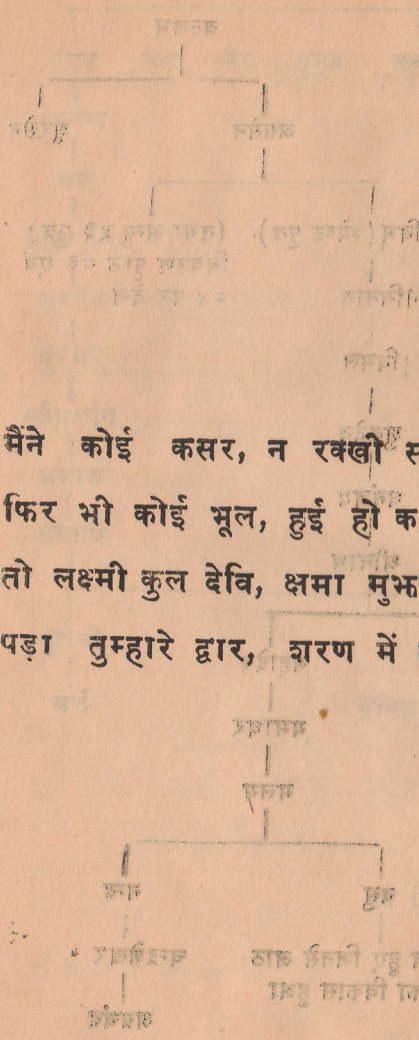

मैंने कोई कसर, न रक्खी सत्य कथन में ।
फिर भी कोई भूल, हुई हो काव्य-सृजन में ।।
तो लक्ष्मी कुल देवि, क्षमा मुझको कर देना ।
पड़ा तुम्हारे द्वार, शरण में तुम ले लेना ।।

मनोज-काव्य-सृजन

१. अहिल्या का परित्याग **मूल्य १५ रुपया**

इस खण्ड काव्य में प्रमाणित किया गया है कि अहिल्या एक सती साध्वी वीरांगना ऋषि - पत्नी थी । इन्द्र के साथ उसकी अनैतिक कथा जो अभी प्रचलित है; भ्रामक, असत्य एवं निर्मूल है ।

२. वैश्रवण **मूल्य ५ रुपया**

इस खण्ड काव्य में रावण का पूर्ण परिचय तो आप प्राप्त करेंगे ही साथ ही देखेंगे कि राम - रावण युद्ध सुनियोजित था; इस युद्ध का कारण सीता - हरण कदापि नहीं था ।

३. राम-अवतरण **मूल्य ३० रुपया**

राम जन्म से किष्किन्धा तक का वृत्तांत नये परिवेश में ।

४. श्री रामेश्वरम् **मूल्य १० रुपया**

इस खण्ड काव्य में सिद्ध किया गया है कि युद्ध - नीति के अनुसार पेड़ की आड़ से बालि-वध कोई पाप नहीं था । साथ ही इसमें आप पढ़ेंगे उर्मिला का मार्मिक पत्र, जो सीता-हरण के पश्चात उसने लक्ष्मण को लिखा था ।

५. स्वर्णमयी लंका **मूल्य २१ रुपया**

जिसे हम सोने की लंका कहते हैं; मात्र एक रावण के दुष्ठठ ने उसे किस स्थिति में पहुँचा दिया ? इस ग्रंथ में आप अनेक नये पात्रों का भी परिचय प्राप्त करेंगे, जिनके संबंध में आपने अब तक पढ़ा-सुना नहीं होगा। विभीषण के लंका त्याग के बाद उसकी पत्नी और पुत्री पर क्या बीती, यह भी आपको इस ग्रंथ में पढ़ने को मिलेगा।

६. अयोध्या में श्रीराम **मूल्य ११ रुपया**

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज्य नहिं काहुहिं ब्यापा।

क्यों और कैसे ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने हेतु इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

७. सिय-विजन-वास **मूल्य २१ रुपया**

इस खण्ड काव्य में राम का द्वन्द, सीता की व्यथा एवं लव कुश का वीरत्व प्रदर्शित है। इसे पढ़कर आप अपने आँसू रोक नहीं पायेंगे।

८. राम-तनय **मूल्य ५ रुपया**

सिय विजन वास का संक्षिप्त बाल - संस्करण, जिसका स्वर - बद्ध प्रस्तुतीकरण गायक गौरव लुक्मान एवं उनके साथियों-द्वारा आपने अनेक बार अनेक नगरों में सुना होगा।

९. रामकथा-संजीवन **मूल्य ९५ रुपया**

रामचरित संपूर्ण नया दृष्टिकोण तथ्य पूर्ण कथानक।

१०. महाराज्ञी त्रिपुर सुन्दरी **मूल्य १० रुपया**

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक धरातल पर रचित सर्वप्रथम पुस्तक। आरती एवं श्रीयंत्र पूजन - विधि सहित।

११. अग्र - कुल - कलश **मूल्य १० रुपया**

श्री श्री १००८ महाराजा अग्रसेन जी की पद्यात्मक गौरव गाथा। अग्रवाल वंश की उत्पत्ति एवं अग्रोहा का उत्थान-पतन।

१२. बंगोद्धार **मूल्य ३ रुपया**

बंग विजय का इतिहास।

कुछ मनोरंजनार्थ—

१. नज़र से बचके **मूल्य १० रुपया**

(मनोज - कृत उर्दू काव्य)

२. श्याम सुलोचन **मूल्य १.५० रुपया**

सुरुचि पूर्ण सरस सवैया)

३. जब अवकाश मिले तब आना मूल्य १.५० रु.

(उपरोक्त पंक्ति पर आधारित अनेक छन्द)

उपन्यास—

ज्वार भाटा मूल्य १५ रुपया

लेखक—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

(ऐसा उपन्यास जिसे आप पढ़ते ही रह जावें)

कवि - परिचय

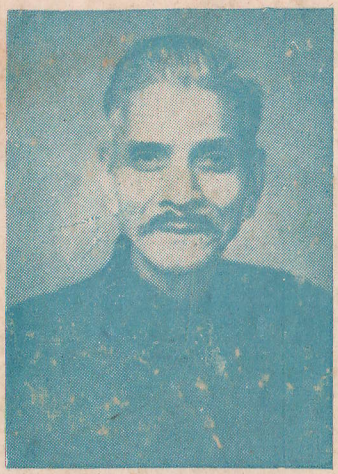

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद द्वारा पुरस्कृत और मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित कविवर रामकिशोर अग्रवाल 'मनोज', पांच दशक तक अनवरत साधना के पश्चात् 'ध्रुवकेतु' की भाँति उदित हुए और उनका यह उदय सृजन की संभावना का सूर्य सिद्ध हुआ।

'सिय विजन वास', श्री रामेश्वरम्, तथा 'अहिल्या का परित्याग, जैसे खण्ड-काव्यों और बंगोद्धार एवं 'नजर से बचके' जसे स्फुट संकलनों ने उन्हें सिद्ध, समर्थ कवि के रूप में सुस्थापित किया।

'अहिल्या का परित्याग' मनोज जो का विचारोत्तेजक और युगान्तकारी खण्ड काव्य है।

'महाराज्ञी त्रिपुर सुन्दरी' कृति—मनोज जो को स्थिर श्रद्धा और आशु कवित्व का शिलालेख है।

और, अब प्रस्तुत है ऐतिहासिक परिवेश में अग्रवाल समाज के उद्भव पर एक और खंड-काव्य 'अग्र-कुल-कलश'।

परम्परा के पूजक और नवीन के स्वागतकर्त्ता मनोज जो का कृतृत्व भी प्रणम्य है और व्यक्तित्व भी।

▷राजकुमार तिवारी 'सुमित्र'